वर्ष 3 अंक 1 मार्च 1995

मलेरिया पत्रिका

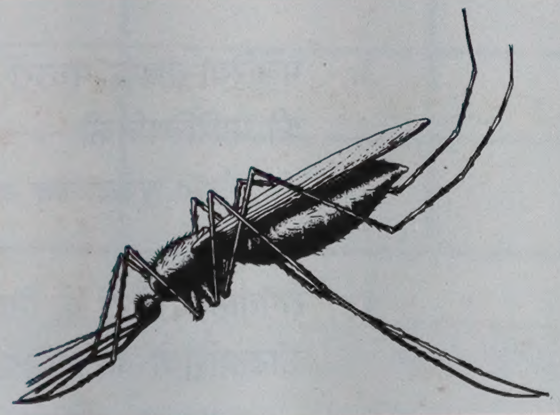

मलेरिया अनुसंधान केन्द्र
(भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद)

04262
018-317
COMMUNITY HEALTH CELL
LIBRARY AND DOCUMENTATION UNIT
BANGALORE

मलेरिया पत्रिका

(त्रैमासिकीय)

वर्ष 3 अंक 1, मार्च 1995

सम्पादक
डॉ० विनोद प्रकाश शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ० सरला सुब्बाराव
डॉ० सुरेन्द्र कुमार शर्मा

प्रबन्धक
डॉ० अरुणा श्रीवास्तव
श्री इज़हार उस्मानी

प्रकाशन एवं सज्जा
श्री जितेन्द्र कुमार
श्री दानसिंह सौंटियाल
कु० आरती शर्मा
श्री तरुण मल्होत्रा

विषय सूची

1. आपके पत्र 3

2. सम्पादकीय 4

3. मलेरिया-वाहक मच्छरों की पारिस्थितिकी 7
डॉ० भूपेन्द्र नाथ नागपाल

4. रोगवाहक कीटों के नियन्त्रण में कीटनाशियों की भूमिका 17
डॉ० के० राघवेन्द्र

5. राजस्थान के पोखरण क्षेत्र में मलेरिया की महामारी 23
डॉ० राघव प्रसाद शुक्ल

6. मलेरिया परजीवी की जैव-रासायनिकी 29
दिनेश चन्द्र

7. प्रासंगिकी 33

8. विज्ञान रश्मि 35

आपके पत्र

प्रशंसनीय एवं अर्थपूर्ण प्रयास

आपके द्वारा प्रकाशित व प्रेषित "मलेरिया पत्रिका" प्राप्त हुई। मलेरिया के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथा खोजपूर्ण एवं तथ्यात्मक लेखों को पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। मलेरिया की भयावहता, उससे बचने के उपाय, मच्छरों के उन्मूलन सम्बन्धी जानकारियों से चिकित्सक, स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी तथा जन साधारण निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे।

सभी लेखों का सम्पादन बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। आपका यह प्रयास निश्चित रूप से प्रशंसनीय एवं अर्थपूर्ण है। इसकी छपाई, साज-सज्जा, गेट-अप आदि भी सुन्दर बन पड़े हैं। राजभाषा में इसका प्रकाशन एक स्तुत्य प्रयास है। आपके सभी सहयोगियों को भी मेरी ओर से यथायोग्य नमस्ते कहें। इस पत्रिका के प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

प्रो० रासा सिंह रावत
संसद सदस्य (लोक सभा)

जन-जागृति के लिए पत्रिका वितरण का विस्तार

वास्तव में "मलेरिया पत्रिका" मलेरिया-साहित्ययुक्त, ज्ञानवर्द्धक एवं प्रशंसनीय है। पत्रिका का प्रचार-प्रसार कुछ विशेष व्यक्तियों एवं संस्थाओं तक सीमित न हो कर जन-जागृति हेतु अपने विभाग के साथ-साथ अन्य विभागों, शिक्षकों, छात्रों, कालेजों, पुस्तकालयों एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं के पुस्तकालयों में इसके वितरण से मलेरिया सम्बन्धी कार्य में गतिशीलता लाने में एवं मलेरिया रोग के नियन्त्रण में सहायक सिद्ध होगा।

डॉ० सी० एल० बघेल
झाँसी रोड, रामनगर, उरई

मलेरिया सम्बन्धी जन-चेतना जागृत करने की अगुआई

मलेरिया पत्रिका के सफल सम्पादन हेतु हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें। अचानक "मलेरिया पत्रिका" मेडिकल कालेज की लाइब्रेरी में हाथ लगी। कलेवर और सामग्री बहुत ही अच्छी लगी। इस राष्ट्रीय समस्या के लिए पत्रिका सफल साबित होगी, यही हमारी उम्मीद है। मलेरिया कई रूपों में प्रकट हो रहा है तथा ग्रामीण इलाकों में आर्थिक रूप से भी चोट पहुँचा रहा है। इससे व्यक्ति कृश एवं कार्यहीन हो जाता है। अतः मलेरिया को उन्मूलित करने में आपकी यह अगुआई जन-चेतना को निःसन्देह जागृत करेगी।

डॉ० आर० के० मालतेत
हॉस्पिटल चौराहा, बाँसबाड़ा, राजस्थान

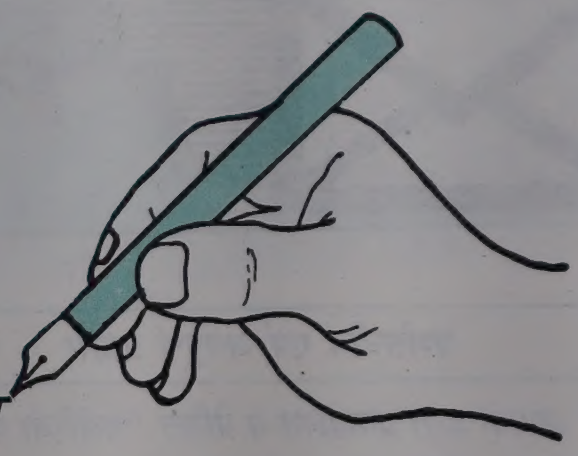

सम्पादकीय

पारिस्थितिकीय (इकोलॉजिकल) आधार पर मलेरिया के कई रूप हो सकते हैं जैसे परियोजना मलेरिया (प्रोजेक्ट मलेरिया), औद्योगिक मलेरिया (इण्डस्ट्रियल मलेरिया), वन्य मलेरिया (फॉरेस्ट मलेरिया), सीमावर्ती मलेरिया (बॉर्डर मलेरिया) आदि। देश में विभिन्न विकास गतिविधियों के कारण पारिस्थितिकी (इकोलॉजी) बदल रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई और जल-विद्युत योजनाएँ अस्तित्व में आ रही हैं। शहरों में अनेक प्रकार के निर्माण कार्य चल रहे हैं। विभिन्न कल-कारखाने स्थापित किए जा रहे हैं। इन सभी गतिविधियों से मच्छर-जनक परिस्थितियाँ पैदा हो रही हैं। रोज़ी कमाने के लिए बड़ी संख्या में लोग इन कार्य-स्थलों पर आ रहे हैं। इनमें से कई लोग ऐसे स्थानों के भी हैं जहाँ पर मलेरिया स्थानिक (एण्डमिक) रूप से व्याप्त है। उनके शरीर में मलेरिया परजीवी हो सकते हैं जिन्हें बढ़ती हुई मच्छर-जनक परिस्थितियों से उत्पन्न मच्छर फैला सकते हैं।

आँकड़े दर्शाते हैं कि सन् 1947 के आस-पास प्रतिवर्ष लगभग साढ़े सात करोड़ लोग मलेरिया से पीड़ित होते थे और लगभग आठ लाख व्यक्ति अपने प्राणों से हाथ धो बैठते थे। जब मलेरिया प्रकोप महामारी का रूप धारण कर लेता था तो इससे कई गुनी अधिक संख्या में लोगों की मृत्यु हो जाया करती थी। मलेरिया से होने वाली मृत्युओं और उससे उत्पन्न शारीरिक दुर्बलता के कारण उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र, केरल के वायनाड और कर्नाटक के मलनाड में कृषि उत्पादन में भीषण हानि होती थी। औद्योगिक उत्पादन भी बहुत कम हो जाता था। सिंटन ने सन् 1935 में हिसाब लगाया कि मलेरिया के कारण प्रतिवर्ष सात अरब पचास करोड़ रुपयों का नुकसान होता था।

सरकारी स्तर पर मलेरिया नियन्त्रण का जो कार्य बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में आरम्भ हुआ वह सन् 1964 में अपनी चरम सफलता पर पहुँच गया। जब राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत मलेरिया के कारण एक भी मृत्यु नहीं हुई और केवल एक लाख व्यक्ति ही उससे आक्रान्त हुए, सरकार ने समझा की मलेरिया तो अब लगभग समाप्त हो गया और अब तपेदिक,

कुष्टरोग, फाइलेरिया, पीलिया आदि अन्य संचारी रोगों के नियन्त्रण पर ध्यान देना चाहिए किन्तु, मलेरिया के विरुद्ध यह सफलता अल्पकालीन थी। तकनीकी, प्रशासनिक एवं आर्थिक कारणों से इस रोग का नियन्त्रण भली प्रकार से नहीं हो पाया। अमरीका ने भी इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली डीडीटी की आपूर्ति सहायता एकाएक बन्द कर दी क्योंकि तकनीकी कारणों से प्रमुख मलेरिया-वाहक मादा मच्छर में कीटनाशियों के विरुद्ध प्रतिरोध था। मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम को सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं में विलय कर देना, रिक्त पदों को न भरना, विद्यमान पद-धारियों को परिवार कल्याण आदि कार्यक्रमों में लगा देना आदि प्रमुख प्रशासनिक कारण थे। सन् 1976 में मलेरिया की रोग-घटनाओं की संख्या लगभग पैंसठ लाख तक पहुँच गई। इस परिस्थिति से पार पाने के लिए सरकार ने मलेरिया के नियन्त्रण-प्रचालन की संशोधित योजना (मॉडिफाइड प्लान ऑफ ऑपरेशन) लागू की, जिसके फलस्वरूप आज देश में मलेरिया रोगियों की संख्या केवल बीस लाख पर टिकी हुई है। संशोधित नियन्त्रण योजना के तीन उद्देश्य थे—

(1) मलेरिया से होने वाली मृत्युओं को रोकना।

(2) मलेरिया से रुग्णता में कमी लाना।

(3) हरित-क्रान्ति और औद्योगिक-उत्पादन को बनाए रखना।

वास्तव में इस संशोधित योजना के अन्तर्गत मलेरिया नियन्त्रण के लिए तीन स्तरों पर प्रयास किए गएः—

1. सरकारी स्तर पर प्रयास,
2. नियन्त्रण कार्यों में जन सहयोग, तथा
3. मलेरिया पर अनुसंधान एवं प्रशिक्षण।

इस योजना की प्रमुख विशेषता यह थी कि मलेरिया ग्रस्त गाँवों में अब कई स्रोतों से मलेरिया की दवा उपलब्ध की जा सकती थी जैसे औषधि वितरण केन्द्र (ड्रग डिस्ट्रीब्यूशन सेण्टर), ज्वर उपचार डिपो (फीवर ट्रीटमेण्ट डिपो) आदि।

उपर्युक्त संशोधित योजना में बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन/संशोधन की आवश्यकता है। इस संशोधन/परिवर्तन के कारण निम्नलिखित हैंः—

1. यद्यपि वायवैक्स मलेरिया की रोग-घटनाओं में कमी आई है किन्तु जानलेवा *फैल्सीपैरम* मलेरिया की रोग घटनाओं की संख्या ज्यों कि त्यों बनी है। जानलेवा *प्लाज़्मोडियम फैल्सीपैरम* जाति के मलेरिया परजीवी के क्लोरोक्वीन प्रतिरोधी क्षेत्रों की संख्या बढ़ती जा रही है। केवल क्लोरोक्वीन का प्रतिरोध ही नहीं, अपितु कुछ स्थानों पर सल्फा-पायरिमिथामीन औषधि मिश्रण (सल्फाडॉक्सीन एवं पायरिमिथामीन) का भी असर समाप्त हो रहा है जिसके प्रति पहले ये परजीवी सुग्राही (सस्सेप्टिबल) थे।
2. मलेरिया परजीवी की वाहिका मच्छर-जाति *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* में कीटनाशियों के विरुद्ध प्रतिरोध (रेज़िस्टेन्स) बहुत पहले ही प्रकट हो चुका है। कीटनाशियों के छिड़काव से बचने के लिए मच्छरों ने अपना व्यवहार भी बदल दिया है। कीटनाशी छिड़काव के साथ अन्य समस्याएँ भी जुड़ी हैं —जैसे लोगों का छिड़काव कराने से इन्कार कर देना, छिड़काव

के बाद दीवारों को लीप-पोत देना, छिड़काव-दलों को दूर-दूर ले जाना, पेट्रोल व डीज़ल की बढ़ती हुई कीमतें आदि।

3. पर्यावरण में मानव निर्मित परिवर्तनों का होना जैसे—तीव्रगति से शहरीकरण, सिंचाई संरचनाओं का निर्माण, जन-समष्टियों का आवागमन, कल-कारखानों की स्थापना।
4. स्वास्थ्य-सम्बन्धी आधार-भूत संरचनाओं (इन्फ्रास्ट्रक्चर) जैसे प्रबन्ध, सूचना तन्त्र आदि का अभाव एवं कमी।
5. स्थान विशेष की सामाजिक/व्यावहारिक जीवन शैलियों सम्बन्धी जानकारी का अभाव—विशेषकर आदिवासियों के सम्बन्ध में।
6. नई प्रविधियों (टेक्नोलॉजीज़) को ग्रहण करने की अक्षमता।
7. अन्तर्विभागीय समन्वय का अधूरापन एवं बाधक औपचारिकताएँ।
8. स्थान-विशेष के अनुसार अलग-अलग नियन्त्रण उपाय न करना।
9. घर-घर जाकर मलेरिया रोगियों का पता लगाने की सक्रिय रोग-घटना—खोज में शिथिलता।

इन परिस्थितियों से निबटने के लिए मलेरिया नियन्त्रण की पुनरीक्षित रणनीति की आवश्यकता है जिसमें राजनीतिक प्रतिबद्धता (पोलिटिकल कमिटमेण्ट), अन्तर्विभागीय समन्वय (इण्टरसेक्टोरियल कोऑर्डिनेशन), वैधिक संबल (लेजिस्लेटिव सपोर्ट) एवं मलेरिया नियन्त्रण में महामारी-विज्ञान परक विधि का आश्रयण।

प्रशासनिक-स्तर पर मलेरिया नियन्त्रण का विकेन्द्रण (डीसेण्ट्रलाइजेशन) होना चाहिए। महामारी-विज्ञान से सम्बद्ध लोगों की भर्ती बढ़ानी चाहिए।

दूरस्थ स्थानों में भी रोगी की तत्काल खोज और तुरन्त इलाज (अर्ली डिटेक्शन एण्ड प्रोम्प्ट ट्रीटमेंट) करना चाहिए।

मलेरिया के संचार को रोकने के लिए मच्छरों को नियन्त्रित करने के लिए दीर्घकाल तक स्थायी रहने वाले चुने हुए उपाय करने चाहिएँ जैसे पानी को जमा न होने देने के अभियांत्रिकी उपाय, लार्वाभक्षी मछलियों एवं पॉलिस्ट्रिरीन गोलियों का प्रयोग आदि। गाँवों, शहरों को स्वच्छ रखने की शिक्षा एवं उपाय करने चाहिएँ। अस्पतालों में मलेरिया उपचार के आधार-भूत प्रबन्ध करने चाहिएँ।

मलेरिया महामारी फैलने के आसारों का अध्ययन करके उसके पूर्वोपाय करने चाहिएँ। रोग फैलने की सम्भावना के अनुसार इन्तज़ाम करना चाहिए।

दूरस्थ क्षेत्रों में नियन्त्रण उपायों एवं स्वास्थ्य शिक्षा का पहुँचना ज़रूरी है। लोगों को नियन्त्रण कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करना चाहिए।

निश्चित अवधि में नियन्त्रण कार्यों की समीक्षा करनी चाहिए और स्थिति का जायज़ा लेना चाहिए।

वि. प्र. शर्मा

मलेरिया-वाहक मच्छरों की पारिस्थितिकी

डॉ० भूपेन्द्र नाथ नागपाल

संसार में मच्छरों की लगभग तीन हज़ार जातियाँ (स्पीसीज़) हैं जो सैंतीस वंशों (जीनस, बहुवचन जेनरा) के अन्तर्गत आती हैं। इनमें से चार वंश एनोफिलिस, क्यूलैक्स, मैनसोनिया एवं ऐडीज़ चिकित्सकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। मलेरिया, फ़ाइलेरिया, मस्तिष्क-ज्वर एवं हड्डी तोड़ बुखार (डेंगू) इन्हीं वंशों की मादा मच्छरों द्वारा फैलाया जाता है।

भारतवर्ष में मलेरिया एनोफिलिस वंश की नौ जातियों द्वारा फैलाया जाता है जिनके नाम हैः— *(1)एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़ (2) एनोफिलिस स्टीफेन्साई (3) एनोफिलिस डायरस (4) एनोफिलिस सण्डायकस (5) एनोफिलिस मिनिमस (6) एनोफिलिस वरूणा (7) एनोफिलिस एन्युलरिस (8) एनोफिलिस फ्लूविएटिलिस* तथा *(9) एनोफिलिस फिलिप्पिनेन्सिस*।

इन नौ जातियों के अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र और विशिष्ट प्रजनन-स्थल होते हैं। इनकी पारिस्थितिकी के अन्तर्गत हम मच्छरों के नामकरण, उनके अण्डे देने और विश्राम करने के स्थान, मनुष्यों अथवा पशुओं के रक्त-पान में उनकी रूचि आदि विषयों का अध्ययन करते हैं।

1. *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़*

इस मच्छर का नामकरण क्यूलिसिफेसीज़ सन् 1902 में गाईल्स नामक वैज्ञानिक ने किया था क्योंकि यह मच्छर क्यूलेक्स वंश के मच्छरों की तरह सतह पर विश्राम करता है। विश्राम की अवस्था में सतह के साथ वैसा ही कोण बनाता है जैसा कि क्यूलैक्स वंश का मच्छर। गाईल्स ने इस मच्छर के टाइप-फार्म (पहले-पहल जिसके आधार पर इस मच्छर का वर्णन हुआ) को ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में जमा किया था और आज भी वह वहीं पर सुरक्षित है।

एनो० क्यूलिसिफेसीज़ मच्छर-जाति सदा धीरे बहते हुए स्वच्छ जल में प्रजनन करती है। इसके उत्पत्ति-स्थल प्रायः नदियाँ, नहरें तथा उनकी शाखाएँ, आस-पास के पानी भरे गड्ढे एवं रिसते हुए पानी के संचय होते हैं (चित्र 1)। इस मच्छर की मादा बरसात के तुरन्त बाद पोखरों, धान के खेतों, कुओं, सड़कों के दोनों ओर बने गड्ढों (जिन्हें बरसाती गड्ढे कहते हैं) में भी अपने अण्डे देती है। बैलगाड़ी के पहियों से तथा पशुओं के खुरों से बने गहरे निशानों में भी इस मच्छर-जाति की मादा के अण्डे, लार्वे और प्यूपे पाए जाते हैं।

ये मच्छर प्रायः पशुशालाओं में ही विश्राम करते हैं, किन्तु घरों, जंगलों, झाड़ियों आदि में भी विश्राम करते हुए मिलते हैं। इनमें रात्रि के समय मवेशियों और मनुष्यों दोनों को काटने की प्रवृति होती है पर ये मवेशियों के रक्त को अधिक पसन्द करते हैं। वैसे तो इन मच्छरों की मादाएँ पूरी रात मनुष्यों और मवेशियों को काटती हैं, पर इनका अधिकतम काटने का समय रात्रि सात बजे से प्रातः चार बजे के बीच होता है। इसके समय में स्थान के अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

यह मच्छर जाति भारत के हर राज्य में पाई जाती

है केवल अण्डमान और कारनिकोबार द्वीप को छोड़कर अफगानिस्तान, बहरीन, ईरान, ट्यूनिशिया, ओमन, पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, उत्तरी चीन, इंडो-चाईना, माएनमार, नेपाल और थाईलैण्ड में भी इस जाति का संचार है।

एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़ मच्छर जाति भारत के उत्तर-पूर्व भाग को छोड़कर हर प्रान्त के ग्रामीण क्षेत्रों में मलेरिया का संचार करती है। भारत के अलावा यह पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, मस्कट, माएनमार, नेपाल एवं श्रीलंका में भी मलेरिया फैलाती है। भारत में मलेरिया के परजीवी का पता लगाने के लिए अभी तक इस जाति की लगभग तीन लाख मादा-मच्छरों का शरीर-विच्छेद किया जा चुका है। इसमें से सात सौ मच्छरों की लार ग्रन्थियों में और चार सौ के उदर पर युग्मक पुटी (ऊसिस्ट) में मलेरिया के परजीवी पाए गए हैं। इस मच्छर जाति की चार सहोदर जातियाँ भारतवर्ष में मिलती हैं जिन्हें ए, बी, सी और डी नाम दिए गए हैं।

2. *एनोफिलिस स्टीफेन्साई*

वैज्ञानिक लिस्टन ने इस मच्छर का नाम डॉ० जे० डब्ल्यू० डब्ल्यू० स्टीफन के नाम पर रखा था। इस मच्छर के मूल प्ररूप (टाईप फार्म) का अभी तक पता नहीं चला कि कहाँ पर रखा है।

हम इस मच्छर को घरेलू एनोफिलिस कहते हैं क्योंकि यह शहरों में घरों के अन्दर पानी भरे बर्तनों, कूलरों, छत की टंकियों आदि में पनपता है (चित्र 2)। इसके अतिरिक्त बनते हुए मकानों की तराई के लिए बनाई गई हौदियों और टैंकों में भी इसका प्रजनन होता है। गाँव तथा शहर के तालाबों में भी इस मच्छर जाति के अण्डे मिलते हैं।

यह मच्छर शहर में तो ज्यादातर घरों के अन्दर ही विश्राम करते हैं पर गाँव में प्रायः पशुशालाओं में विश्राम करते हैं। शहरों में यह रात्रि के समय घरों के अन्दर मनुष्यों को और ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं को काटते हैं। इनका रात में काटने का शिखर समय (पीक टाइम) दस बजे से बारह बजे तक होता है पर यह मौसम के अनुसार बदलता रहता है। उत्तर-पूर्व क्षेत्रों को छोड़कर *एनोफिलिस स्टीफेन्साई* भारत में तो सभी शहरी क्षेत्रों में मलेरिया फैलाता है। पाकिस्तान, ईराक एवं ईरान के शहरी इलाकों में भी मलेरिया फैलाता है।

यह मच्छर-जाति भारत के अलावा संसार में अफगानिस्तान, बंगलादेश, चीन, ईराक, ईरान, माएनमार, नेपाल, पाकिस्तान, ताईवान, थाईलैण्ड आदि देशों में भी मिलती है।

इस जाति के मच्छर जो शहरों में मिलते हैं उन्हें *एनोफिलिस स्टीफेन्साई,* टाईप फार्म तथा जो गाँव में मिलते हैं उन्हें *एनोफिलिस स्टीफेन्साई, माइसोरेंसिस* कहते हैं। अभी तक भारत में इस जाति के 28 हजार से ज्यादा मच्छरों का मलेरिया-परजीवी के अध्ययन के लिए शरीर-विच्छेद किया जा चुका है तथा इनमें से 251 मच्छरों के उदर पर तथा 150 की लार ग्रंथियों में मलेरिया के परजीवियों का पता चला है।

3. *एनोफिलिस डायरस*

इस मच्छर के लक्षणों के आधार पर पाईटन और हरीसन नामक वैज्ञानिकों ने इस मच्छर जाति का नामकरण किया है। इसमें मलेरिया फैलाने की बहुत अधिक क्षमता है। डायरस का लैटिन भाषा में अर्थ होता है डराने वाली। इसके भी मूल प्ररूप (टाईप फार्म) के बारे में अभी तक पता नहीं है कि किस संग्रहालय में रखा है।

यह जंगली मच्छर है। जंगलों में छोटे-छोटे गड्ढों में भरे पानी में यह पनपता है जिनमें पेड़ों की बहुत पत्तियाँ गिरी होती हैं (चित्र 3)। इसके अतिरिक्त बरसात में बने हुए पानी के गड्ढों, पहाड़ी-नालों के किनारे पर बने छोटे-छोटे पोखरों, बिना उपयोग में लाए जाने वाले जल-कुओं में भी इस जाति की मादाएँ अण्डे देती हैं किन्तु ये सभी प्रजनन-स्थल घने जंगलों में ही होते हैं।

प्रायः जंगलों में झाड़ियों के अन्दर या बड़े पेड़ों के

चित्र 1 : नहर : *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* की मुख्य उत्पत्ति स्थल

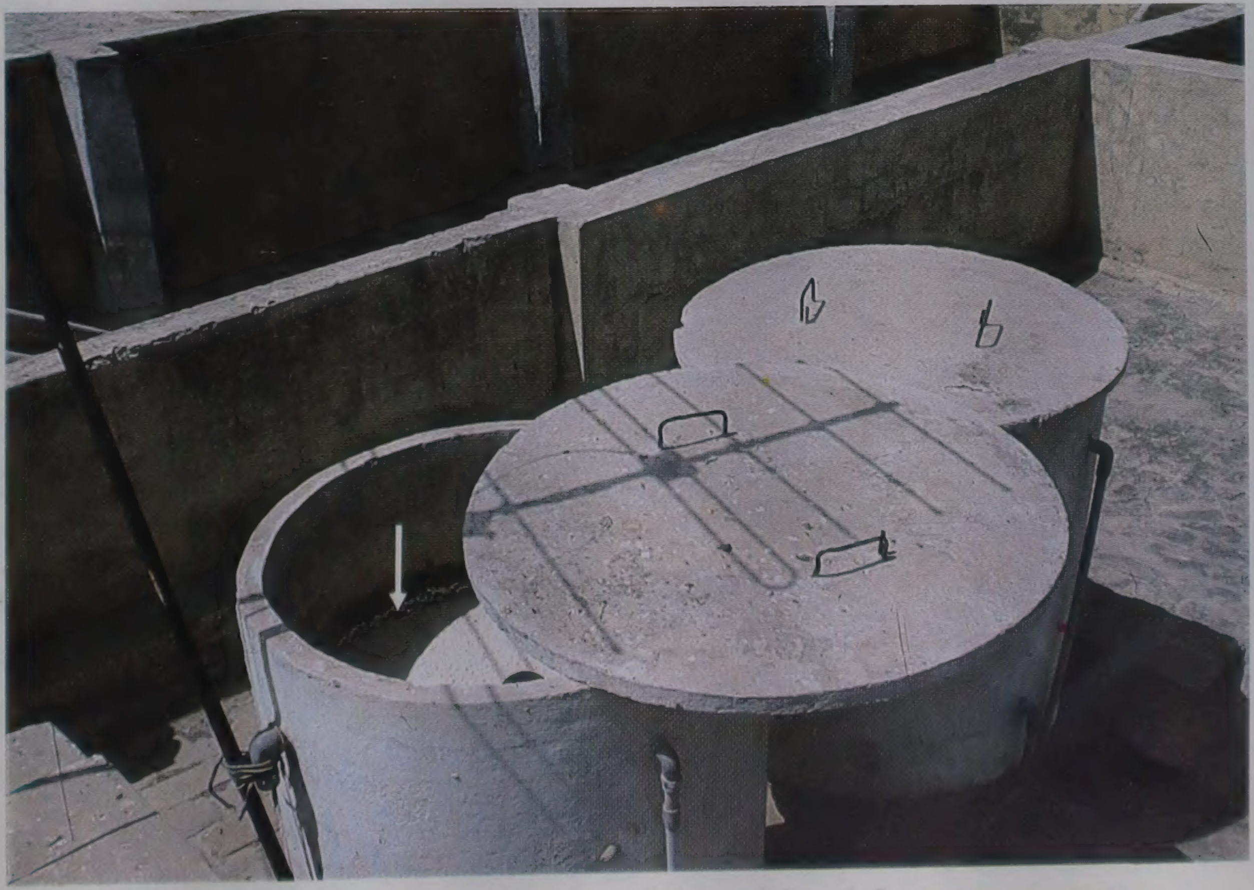

चित्र 2 : छत पर पानी की टंकियाँ : *एनोफिलिस स्टीफेन्साई* की मुख्य प्रजनन स्थल

चित्र 3 : जंगलों में पेड़ों की पत्तियाँ गिरे व पानी भरे गड्ढे : *एनोफिलिस डायरस* के मुख्य उत्पत्ति स्थल

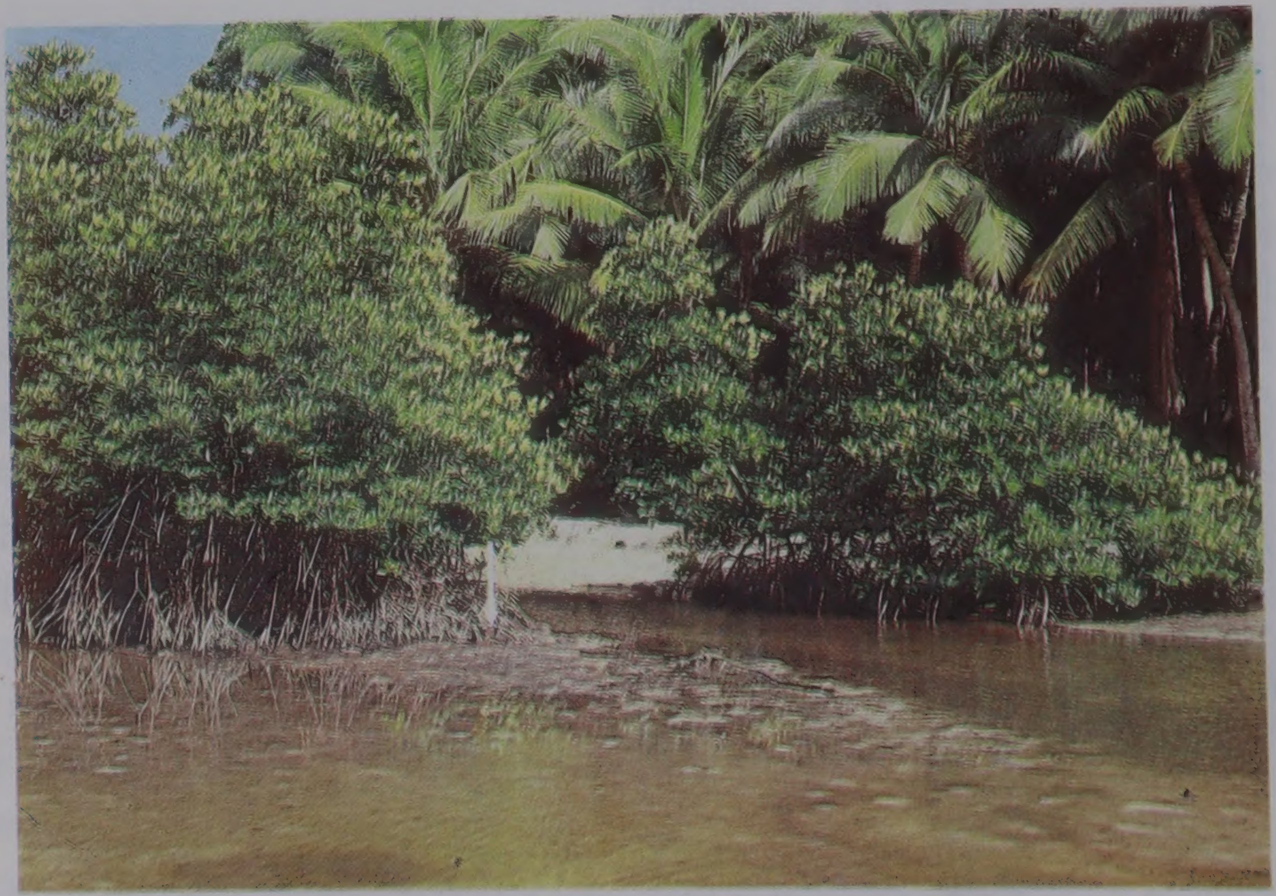

चित्र 4 : समुद्री तट की दरारें (क्रीक्स) : साफ खारे पानी में *एनोफिलिस सण्डायकस* की मुख्य प्रजनन स्थल

कोटरों एवं छिद्रों में यह मच्छर जाति विश्राम करती है। इस जाति के मच्छर घरों के बाहर और अन्दर दोनों स्थानों पर मनुष्य और मवेशियों को काटते हैं किन्तु मनुष्य के रक्त को अधिक पसन्द करते हैं। घरों से बाहर इनके काटने का शिखर-समय रात्रि 10 से 2 बजे तक होता है।

यह भारत के अतिरिक्त बंगलादेश, ईस्ट बोरनियो, कंबोडिया, माएनमार, सुमात्रा और थाईलैण्ड में भी मलेरिया फैलाता है। भारत में इस जाति के मच्छर अरुणाचल प्रदेश, आसाम, कर्नाटक, केरल, मेघालय, मिजोरम, तमिलनाडु, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल के घने जंगलों में मिलते हैं। यह जाति बंगलादेश, इंडोनेशिया, मलेशिया, उत्तरी माएनमार एवं थाईलैण्ड में भी पाई जाती है। इस मच्छर जाति की सात सहोदर जातियाँ (सिबलिंग स्पीसीज़) हैं, जिनको ए, बी, सी, डी, एफ, जी, और टाकासागोएन्सिस नामों से पुकारते हैं। *एनोफिलिस डायरस* को भारत देश में पहले हम *एनोफिलिस बालाबासेन्सिस* के नाम से पुकारते थे।

भारत में इस जाति के लगभग 4000 (चार हजार) मच्छरों का विच्छेद किया जा चुका है जिनमें से 36 मच्छरों के उदर पर और 44 मच्छरों की लार ग्रंथियों में मलेरिया परजीवी मिले हैं।

4. *एनोफिलिस सण्डायकस*

रोडेनवाल्ट नामक वैज्ञानिक ने इसका नाम सुण्डा द्वीप (मलेशिया) नाम के ऊपर रखा था क्योंकि सबसे पहले यह मच्छर इस द्वीप से पकड़ा गया था। ये मच्छर ज्यादातर समुद्रीतट पर ही पाए जाते हैं क्योंकि इसकी मादा खारे पानी (ब्रेकिश वाटर) में अण्डे देती है। घरेलू या बरसात का पानी जब समुद्र के पानी से मिलता है तो समुद्र के पानी में नमक की मात्रा कम हो जाती है। ऐसे पानी को ''ब्रेकिश वाटर'' कहते हैं। इस मच्छर जाति की मादाएँ अपने अण्डे समुद्र तट पर स्थित साफ पानी के गड्ढों, समुद्री जल की झीलों (लेगून्स), समुद्री तट की दरारों (क्रीक्स) एवं घरों में बनी पानी की टंकियों में भी अपने अण्डे दे देती है, पानी में 0.16 से 1.36 प्रतिशत तक की नमक की मात्रा यह मच्छर सहन कर सकता है (चित्र 4)।

अधिकतर यह मच्छर पूरी रात घरों के बाहर एवं अन्दर सोने वाले मनुष्यों और मवेशियों को काटता है, परन्तु इसका काटने का शिखर समय रात्रि 9 से 2 बजे तक होता है।

जिस किसी देश के समुद्र तट पर ये मच्छर मिलते हैं वहीं मलेरिया फैलाते हैं। भारत देश के अतिरिक्त यह बंगलादेश, चीन, इन्डोनेशिया, माएनमार, सुलावसी और द्वीप देशों में भी यह मच्छर जाति पाई जाती है। भारत में सन् 1960 से पहले यह मच्छर उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और आन्ध्र प्रदेश के समुद्र तट पर मिलते थे और मलेरिया की महामारी फैलाते थे। अब यह मच्छर सिर्फ अण्डमान द्वीप-समूह में ही मिलते हैं और मलेरिया फैलाते हैं।

वैज्ञानिकों को इस मच्छर में भी दो सहोदर जातियों की सम्भावना प्रतीत होती है। उनका अनुमान है कि एक जाति तो साफ पानी में और दूसरी जाति नमक वाले पानी (ब्रेकिश वाटर) में अपने अण्डे देती है।

मलेरिया परजीवी का पता लगाने के लिए भारत में अभी तक इस जाति के लगभग सत्रह हज़ार मच्छरों का विच्छेद किया जा चुका है। इनमें से 199 मच्छरों के उदर पर तथा 459 की लार ग्रन्थियों में मलेरिया के परजीवी मिले हैं।

5. *एनोफिलिस मिनिमस*

रोबाल्ड नामक वैज्ञानिक ने छोटे आकार के कारण इसका नाम *एनोफिलिस मिनिमस* रखा है। लैटिन भाषा में मिनिमस का अर्थ बहुत छोटा होता है। इसका मूल-प्ररूप (टाईप फार्म) भी किस संग्रहालय में रखा गया है इसका पता नहीं चल सका है। पर्वतीय क्षेत्रों के पहाड़ी नालों तथा चाय की खेती के लिए बनी सिंचाई की नालियों में धीमी गति से बहते पानी में यह मच्छर-जाति प्रजनन करती है (चित्र 5)।

चित्र 5 : पर्वतीय क्षेत्रों में धीमी गति से बहते नालों तथा रुके पानी में *एनोफिलिस मिनिमस* व *एनोफिलिस वरुणा* के मुख्य उत्पत्ति स्थल

कुछ क्षेत्रों में इस जाति के मच्छर धान के खेतों और बरसाती गड्ढों में भी अपने अण्डे देती है। इस मच्छर जाति की प्रमुख विशेषता यह है कि यह अण्डे देने के लिए छाया वाली जगह पसन्द करती है। यह जाति ज़्यादातर घरों में विश्राम करती है परन्तु नए अनुसंधान से यह पता चला है कि यह जाति आजकल जंगलों की झाडियों में ज्यादा विश्राम करती है। इस जाति के मच्छर मनुष्यों के रक्त को ज्यादा पसन्द करते हैं और रात में घर के अन्दर और बाहर दोनों जगह पर काटते हैं। इनका अधिकतम काटने का समय मध्य रात्रि से पहले और फिर सुबह 2 से 4 बजे तक होता है। यह समय भिन्न-भिन्न स्थानों पर परिवर्तित होता रहता है। इस जाति के मच्छर पूरे पूर्वी (ओरिएण्टल) क्षेत्र में मिलते हैं। यह जिस क्षेत्र में पाई जाती है वहीं मलेरिया को फैलाती है और भारतवर्ष में

आजकल सिर्फ आसाम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, त्रिपुरा, मेघालय, नागालैण्ड व पश्चिम बंगाल के उत्तरी भागों में मिलती है।

अभी तक इस जाति के डेढ़ लाख से ज्यादा मच्छरों का विच्छेद मलेरिया परजीवी के अध्ययन हेतु किया जा चुका है तथा इनमें से 1350 से अधिक मच्छरों के उदर पर तथा 1350 से अधिक की लार ग्रंथियों में मलेरिया परजीवियों का पता चला है।

6. *एनोफिलिस वरुणा*

यह मच्छर जाति बरसात के बाद ज़्यादा मिलती है इसलिए इसका नाम वरुणा रखा गया है। वरुण का अर्थ होता है ''बरसात के भगवान'' (गॉड आफ रेन) व इस मच्छर के मूल प्ररूप को कहाँ पर रखा गया है इसका अभी तक पता नहीं चल सका है।

इस मच्छर की जाति पर्वतीय क्षेत्र में रुके तथा बहते पानी में अण्डे देती है। उदाहरणतः साफ पानी से भरी हुई टंकियाँ, तालाब, धान के खेत, नहरें तथा उनकी शाखाएँ, कुएँ इत्यादि जिनमें घास या कवक हो इस जाति के प्रजनन स्थल हैं। यह मच्छर जाति घरों, पशुशालाओं के अतिरिक्त बाहर जंगलों में भी विश्राम करती है। इस जाति के मच्छर मवेशियों तथा मनुष्यों दोनों को रात में काटते हैं पर इनका काटने का अधिकतम समय सायं से रात्रि के दस बजे तक होता है। इनका काटने का समय भी एक से दूसरे स्थान पर परिवर्तित होता रहता है।

इस जाति के मच्छर भारतवर्ष के अलावा बंगलादेश, दक्षिणी चीन, माएनमार, श्रीलंका और थाईलैण्ड में भी पाए जाते हैं और पर्वतीय क्षेत्रों में मलेरिया फैलाते हैं। अभी तक इस जाति के लगभग 48 हजार मच्छरों का विच्छेद किया जा चुका है इनमें से 99 के उदर पर तथा 64 की लार ग्रन्थियों में मलेरिया परजीवी मिले हैं।

7. *एनोफिलिस एन्युलरिस*

वन्डर वल्प नामक वैज्ञानिक ने इसका नाम इसके पैरों तथा स्पर्शक पर अँगुठी के आकार की सफेद रचना पर ही एन्युलरिस रखा था। इसका मूल-प्ररूप ''टाईप फार्म'' स्टेट म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्टरी, नीदरलैण्ड में रखा गया है। यह जाति ज़्यादातर स्थिर पानी जिसमें अधिक घास हो में अपने अण्डे देती है। इसके मुख्य प्रजनन स्थल बड़ी टंकियाँ, तालाब, गड्ढे आदि हैं पर यह धान के खेतों, कुओं, नदियों, तालाबों, चश्मों और झीलों के किनारों जहां पर हरी घास होती है पर भी अण्डें देती है (चित्र 6)। ये मच्छर प्रायः पशुशालाओं में ही विश्राम करते हैं इसके अतिरिक्त घरों, जंगलों, झाड़ियों में भी विश्राम करते पाए गए हैं। इनमें रात्रि के समय मवेशियों को काटने की प्रवृत्ति होती है पर मवेशियों के न मिलने पर यह मनुष्यों को पूरी रात काटते रहते हैं। इनका काटने का अधिकतम समय मध्य रात्रि से पहले होता है। यह समय स्थान के अनुसार परिवर्तित भी होता रहता है। भारतवर्ष में यह मच्छर प्रायः हर राज्य में मिलता है। यह संसार के पूर्वी (ओरिएन्टल) क्षेत्र से अफगानिस्तान, पाकिस्तान, इन्डोचाईना तथा श्रीलंका तक पाया जाता है। इस मच्छर के द्वारा मलेरिया का संचार भारतवर्ष में उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के समुद्र तटीय क्षेत्रों में तथा पड़ोसी देश जैसे चीन, इण्डोनेशिया, मलेशिया, माएनमार तथा नेपाल में भी होता है।

इस जाति में दो सहोदर जातियाँ पाई जाती हैं। अभी तक भारत में इस जाति के एक लाख से भी अधिक मच्छरों का मलेरिया परजीवी के अध्ययन के लिए शरीर विच्छेद किया जा चुका है तथा इनमें से 48 मच्छरों के उदर पर तथा 61 की लार ग्रंथियों में मलेरिया परजीवियों का पता चला है।

8. *एनोफिलिस फ्लूविएटिलिस*

इस मच्छर का नामकरण फ्लूविएटिलिस सन् 1902 में जैमस् नामक वैज्ञानिक ने किया था क्योंकि इस मच्छर के डिम्भ एक साफ पानी के चश्में के घास वाले किनारे से पकड़े गए थे। इस मच्छर के मूल प्ररूप ''टाईप'' को

चित्र 6 : तालाब के हरी घास वाले किनारे : *एनोफिलिस एन्युलरिस* के मुख्य प्रजनन स्थल

चित्र 7 : धीरे बहते चश्में : *एनोफिलिस फ्लूविएटिलिस* के मुख्य उत्पत्ति स्थल

कहाँ पर रखा गया है अभी तक इसका पता नहीं चल पाया है। इस मच्छर को हम पहाड़ी मच्छर भी कह सकते हैं, क्योंकि यह ज्यादातर पहाड़ों में धीरे बहते हुए चश्मों, बाँधों से रिसते पानी, बाँधों से सिंचाई के लिए निकली नालियों आदि में अण्डे देते हैं (चित्र 7)। इनके अलावा यह पहाड़ों में कम गहरे कुओं, धान के खेतों, गड्ढों (बरसात के दिनों में) आदि में भी अण्डे देते हैं।

यह मच्छर ज्यादातर घरों में विश्राम करता है। इसके अतिरिक्त यह पशुशालाओं और बाहर जंगलों में भी विश्राम करता है। इसमें रात्रि के समय मनुष्यों और मवेशियों को काटने की प्रवृति होती है पर मनुष्यों के खून को यह ज्यादा पसन्द करता है। इसका मनुष्यों को काटने का समय स्थान से स्थान परिवर्तित होता रहता है पर यह रात्रि 8 बजे से मध्य रात्रि से कुछ अधिक देर तक काटता है। यह मच्छर जाति भारत के लगभग सभी राज्यों तथा संसार के ओरिएण्टल क्षेत्र जैसे पश्चिमी एशिया, पूर्वी और दक्षिणी अरब, बहरीन, ईरान, ईराक, रूस, ओमान और पाकिस्तान में पाई जाती है यह जाति भारतवर्ष तथा पड़ोसी देश ईरान, नेपाल और पाकिस्तान के पर्वतीय क्षेत्रों में मलेरिया फैलाती है। भारतवर्ष में अभी तक इस जाति के लगभग 70 हजार मच्छरों का मलेरिया परजीवी अध्ययन करने के लिए विच्छेद किया जा चुका है। इनमें से लगभग 1700 के उदर पर तथा 1300 की लार ग्रंथियों में मलेरिया परजीवी मिले हैं।

9. *एनोफिलिस फिलिप्पिनेन्सिस*

लूडलो नामक वैज्ञानिक ने इसका नाम फिलीपीन द्वीप के नाम पर रखा था। इस मच्छर का मूल प्ररूप (टाइप फार्म) यूनाएटेड स्टेट्स नेचुरल संग्रहालय, वाशिंगटन में रखा गया है। यह विभिन्न प्रकार के प्रजनन स्थलों जैसे टँकी, गड्ढे, धान के खेत जहाँ घास लगी होती है में अपने अण्डे देती है (चित्र 8)। इसके अलावा झील के किनारों,

चित्र 8 : पर्वतीय क्षेत्रों के धान के खेतों में खड़े पानी : *एनोफिलिस फिलिप्पिनेन्सिस* के मुख्य प्रजनन स्थल

साफ पानी के नालों और पोखरों जहाँ पर पेड़ों की छाया पड़ती है और पानी में घास लगी होती है में अण्डे देती है।

यह मच्छर ज्यादातर घरों, पशुशालाओं और जंगलों की झाड़ियों में विश्राम करते हैं। इस जाति के मच्छर घरों के अन्दर और बाहर दोनों स्थानों में रात भर पशुओं और मनुष्यों को काटते हैं पर यह ज्यादातर पशुओं के खून को पसन्द करते हैं। इनके काटने का अधिकतम समय रात्रि 8 से 10 बजे तक और सुबह 2 से 4 बजे तक का होता है जो कि स्थान से स्थान बदलता रहता है। यह मच्छर भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र और पड़ोसी देश जैसे माएनमार और बंगला देश में मलेरिया बीमारी फैलाता है। भारतवर्ष के अलावा इस मच्छर की जाति बंगला देश, बोरनियो, चीन, फ्रांस, इण्डोचाईना, जावा, मलाया, माएनमार, फिलिपाइन और सुमात्रा में भी पाई जाती है। मलेरिया परजीवी का अध्ययन करने के लिए अभी तक इस जाति के लगभग 33 हजार मच्छरों का शरीर विच्छेद किया जा चुका है इनमें से 457 के उदर पर और 447 की लार ग्रन्थियों में मलेरिया परजीवियों का पता चला है।

इस जाति के मच्छरों का अभी भारतवर्ष में और भी अधिक अध्ययन होना आवश्यक है क्योंकि नई खोजों से पता चला है कि जो जाति हमारे देश में मिल रही है वो *एनो० फिलिप्पिनेन्सिस* न होकर *एनो० नीवीपस* है □

मच्छर के रक्त चूसने के सात दिन बाद मच्छर के पेट पर बनी युग्मकपुटी (ऊसिस्ट) के भीतर विभाजन आरम्भ हो जाता है जिसके फलस्वरूप हजारों की संख्या में बीजाणु (स्पोरोज़ोइट) बनते हैं। मच्छर के रक्त लेने के चौदह या अधिक दिनों बाद यह युग्मकपुटी (ऊसिस्ट) फट जाती है और हेमोसील से गुजरते हुए बीजाणु मच्छर की लार ग्रंथियों में पहुँच जाते हैं।

रोगवाहक कीटों के नियन्त्रण में कीटनाशियों की भूमिका

डॉ० के० राघवेन्द्र

पिछले दशक में विश्व में मलेरिया रोगियों की संख्या प्रतिवर्ष लगभग पचास लाख और इससे होने वाली मृत्यु-संख्या पन्द्रह से तीस लाख रही। इनमें अफ्रीकी देशों के मलेरिया रोगियों की संख्या सम्मिलित नहीं है। इस अवधि में आधे से भी अधिक मलेरिया रोगी दक्षिण-पूर्वी एशिया क्षेत्र के थे जिनमें से 70 प्रतिशत मलेरिया रोग-घटनाएँ भारतवर्ष में हुईं। भारतवर्ष में मलेरिया रोगियों की संख्या लगभग बीस लाख पर टिकी हुई है।

मलेरिया उत्पन्न करने वाले परजीवी, उनकी वाहिका मच्छर-जाति एवं मलेरिया संचार सम्बन्धी अनेक प्रश्नों के उत्तर अठारहवीं शताब्दी के अन्त एवं उन्नीसवीं के आदि में ही विभिन्न प्रयोगों द्वारा खोज लिए गए थे। मलेरिया का प्राकृतिक संचार तीन आधार-भूत कारकों पर निर्भर करता है– ये कारक हैं :—मनुष्य, मादा एनोफिलिस मच्छर एवं प्लाज़्मोडियम परजीवी। मनुष्य और मच्छर परपोषी (होस्ट) कहलाते हैं और इनमें पनपने तथा वंश विस्तार करने वाले प्लाज़्मोडियम परजीवी। प्लाज़्मोडियम वंश (जीनस) की चार जातियाँ—*प्लाज़्मोडियम वायवैक्स, प्लाज़्मोडियम फैल्सीपैरम, प्लाज़्मोडियम मलेरी* और *प्लाज़्मोडियम ओवेल* मनुष्यों में मलेरिया रोग उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं। मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से इस रोग से पीड़ित होता है। मादा एनोफिलिस तो केवल इन मलेरिया परजीवियों की संचारिका है। मलेरिया-वाहक मच्छरों के पनपने के लिए पर्यावरण के तीन पक्ष विचारणीय हैं– (क) **भौतिक पक्ष**– इसके अन्तर्गत तापमान, आर्द्रता, वर्षा आदि पर विचार किया जाता है; (ख) **जैविक पक्ष**– इसके अन्तर्गत मलेरिया परजीवी-जाति, मलेरिया-वाहक मच्छरों की व्याप्ति एवं उनकी मलेरिया परजीवी को मनुष्यों में फैलाने की क्षमता, मानव-मच्छर सम्पर्क आदि पर विचार किया जाता है; और (ग) **सामाजिक-आर्थिक पक्ष**– इसके अन्तर्गत आर्थिक कारणों अर्थात जीविकोपार्जन के लिए जन-समष्टियों का मलेरिया व्याप्त क्षेत्रों से मलेरिया मुक्त क्षेत्रों में आवागमन एवं आर्थिक-सामाजिक गतिविधियों (भवन, बाँध, सिंचाई साधन आदि का निर्माण, प्राकृतिक विपदा आदि) द्वारा पारिस्थितिकी में परिवर्तन आदि पर विचार किया जाता है।

मलेरिया नियन्त्रण में कीटनाशियों के प्रयोग को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना समीचीन रहेगा। दूसरे विश्व-युद्ध के परवर्ती काल में मलेरिया-वाहक मच्छरों का नियन्त्रण मूलतः तब किया जाता था जब वे जलीय-अवस्था अर्थात् पानी में अण्डों, लार्वों एवं प्यूपों के रूप में होते थे। मच्छरों की इन जलीय-अवस्थाओं (एक्वेटिक स्टेजेज़) को नष्ट करने के लिए लार्वाभक्षी मछलियाँ छोड़ी जाती थीं, पानी पर तेल छिड़का जाता था जिससे लार्वों को ऑक्सीजन न मिले और वे घुटकर मर जाएँ। इनके अतिरिक्त पैरिसग्रीन नामक आर्सनिक के यौगिक (कॉपर

एसिटो आर्सनाइट) का भी प्रयोग किया जाता था जिसको खाकर मच्छरों के लार्वे मर जाते थे। सन् 1901-1903 की अवधि में मच्छरों के "प्राकृतिक नियन्त्रण" की परिकल्पना ने जन्म लिया जिसका अनुप्रयोग (एप्लीकेशन) मलाया में किया गया। यह मलेरिया-वाहक एनोफिलिस वंश के मच्छरों के उत्पत्ति-स्थलों की जानकारी पर आश्रित था। दक्षिण अफ्रीका में वयस्क मच्छरों को सूरजमुखी फूलों के अर्क *क्रायजेन्थियम सिनरेरिओफ़ोलियम* से निर्मित अन्तरक-फुआर (स्पेस-स्प्रे) द्वारा वयस्क मच्छरों का घरों में नियन्त्रण किया गया।

1939 में जब दूसरा विश्व युद्ध छिड़ा तब पाल म्यूलर नामक वैज्ञानिक ने स्विटज़रलैण्ड में "डायक्लोरो-डाइफिनाइल-ट्राइक्लोरो-इथेन" (संक्षिप्त रूप डीडीटी) नामक आर्गेनोक्लोरीन वर्ग के एक कार्बनिक-यौगिक के कीटनाशी गुणों का पता लगाया। इस यौगिक का संश्लेषण ऑथमार ज़ीडलर ने सन् 1874 में जर्मनी में किया था। सन् 1942 में अमेरिका और इंग्लैण्ड की सैनिक छावनियों में डीडीटी नामक इस यौगिक का उपयोग वयस्क-मच्छरनाशी (एडल्टीसाइड) के रूप में किया गया। इस कीटनाशी में अवशिष्ट क्रिया (रेज़िडुअल एक्शन) का गुण था अर्थात् एक बार दीवारों पर छिड़कने के पश्चात् कुछ सप्ताह तक उस पर बैठने वाले मच्छर मरते रहते थे। इस कीटनाशी के प्रयोग से वयस्क मच्छरों के नियन्त्रण में चमत्कारी सफलता मिली। 1942 से 1946 की अवधि में बीएचसी (आधुनिक नाम एचसीएच) तथा डाइल्ड्रिन जैसे अन्य ऑर्गेनोक्लोरीन वर्ग के कीटनाशी भी उपयोग में लाए गए। सन् 1955 में विश्व स्वास्थ्य सभा (वर्ल्ड हैल्थ एसेम्बली) ने वयस्क कीटनाशियों द्वारा मलेरिया उन्मूलन की परिकल्पना को स्वीकार कर लिया। आगामी पन्द्रह वर्षों तक कीटनाशियों द्वारा मलेरिया नियन्त्रण अभियान यूरोप, उत्तरी अमेरिका, रूस, आस्ट्रेलिया और एशिया के कुछ भागों में सफलतापूर्वक चलता रहा। ऊष्ण-कटिबन्धीय देशों में इसे सीमित सफलता ही मिल सकी। भारतवर्ष में 1936 से पहले होने वाले मलेरिया नियन्त्रण के उपाय सारे विश्व में होने वाले मलेरिया नियन्त्रण उपायों के अनुसार थे। भारत एवं विश्व भर में किए जाने वाले ये उपाय मूलतः मच्छरों के जीवन-चक्र की जलीय-अवस्थाओं (एक्वेटिक स्टेजेज़) तक ही सीमित थे। शहरों में मलेरिया फैलाने वाली मच्छर जाति *(एनोफिलिस स्टीफेन्साई)* खुले मटकों, टायरों, डिब्बों, फुव्वारों, कुण्डों, हौदियों, कुओं आदि में भरे पानी की सतह पर अण्डे दे जाती है। यहाँ पर विधि-व्यवस्था (लीगल प्रोवीज़न्स) के लागू करने पर मच्छरों के नियन्त्रण में बड़ी सफलता मिल सकती है। लोग दण्ड के भय से पानी को देर तक खुला और भरा नहीं रखेंगे जिससे उनमें मादा मच्छर अण्डे न दे सकें और लार्वे न पनप सकें। बम्बई में ऐसी विधि-व्यवस्था लागू करने से मच्छर नियन्त्रण में बहुत सफलता मिली।

दक्षिणी अफ्रीका में सूरजमुखी के फूलों के अर्क से बने पायरेथ्रम एक्सट्रेक्ट के मिट्टी के तेल में बने घोल से उड़ने वाले वयस्क मच्छरों के नियन्त्रण में बहुत सफलता मिली थी जिससे प्रेरित होकर दिल्ली, मद्रास और आसाम में मनुष्य के निवासों और पशुशालाओं में पायरेथ्रम-सार के सामुदायिक-परीक्षण (फील्ड ट्रायल्स) किए गए। सन् 1944 में मच्छरों के नियन्त्रण के लिए पहली बार डीडीटी का उपयोग किया गया। दूसरे विश्व युद्ध के दौरान आसाम तथा बर्मा मोर्चों पर मित्र राष्ट्रों (एलाइड आर्मी) के सेना शिविरों में डीडीटी के प्रयोगिक-स्तर पर उपयोग से कीटों के नियन्त्रण में आश्चर्यजनक सफलता मिली। मलेरिया विरोधी अभियान में डीडीटी के घरों के भीतर छिड़काव को एक समर्थ उपाय के रूप में स्वीकार कर लिया गया। उड़ीसा और कर्नाटक राज्यों के शहरी इलाकों में डीडीटी से मच्छरों के नियन्त्रण के प्रयोग किए गए जिनमें अपूर्व सफलता मिली। उपर्युक्त प्रयोगों के अत्यन्त सफल परिणामों से प्रेरित होकर बम्बई में डीडीटी छिड़काव के परीक्षण किए गए और इसके पश्चात् सन् 1946 में कर्नाटक राज्य के धारवार और उत्तरी कनारा के जिलों के ग्रामीण क्षेत्र में सबसे बड़ा मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम

चलाया गया। सन् 1950 में डीडीटी का 75 एवं 50 प्रतिशत जल-परिक्षेप्य-चूर्ण (50 परसेण्ट वाटर डिस्पर्सिबल पाउडर) उपलब्ध होने लगा। इस चूर्ण का छिड़काव अत्यन्त सुविधाजनक और कारगर था। इस प्रकार मलेरिया नियन्त्रण अभियान में डीडीटी को सर्वोच्च वरीयता दी जाने लगी।

इसी अवधि में पहले आसाम और फिर बम्बई में डीडीटी के सगोत्रीय कीटनाशी बीएचसी अथवा एचसीएच का उपयोग किया गया और उसे भी डीडीटी के समान ही प्रभावकारी पाया गया।

डीडीटी के स्थानीय अध्ययनों और परीक्षणों के परिणामों से प्रोत्साहित होकर सन् 1952 में तीन करोड़ व्यक्तियों को मलेरियारोधी अभियानों के अन्तर्गत सुरक्षा प्रदान की गई। सन् 1953 में पंचवर्षीय राष्ट्रीय मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम आरम्भ किया गया और 1958 तक आते-आते इसके अन्तर्गत सोलह करोड़ व्यक्तियों को मलेरिया से सुरक्षा प्रदान की गई। इन पाँच वर्षों की अवधि में डीडीटी छिडकाव का मलेरिया-जनक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा और सभी मलेरिया मापक सूचकाँकों में आश्चर्यजनक कमी आई। मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम के अन्तर्गत भारी सफलता मिलने के परिणामस्वरूप सन् 1955 में आठवीं विश्व स्वास्थ्य सभा (वर्ल्ड हैल्थ एसेम्बली) द्वारा अनुशंसित मलेरिया उन्मूलन नीति के अनुसार भारत ने राष्ट्रीय मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम को राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम में परिवर्तित करने का निर्णय लिया। इस उन्मूलन कार्यक्रम के उद्देश्य थे– मलेरिया संचार को रोकना जिससे संचार रुकने के पश्चात् मलेरिया की नई स्थानीय रोग-घटनाएँ नहीं मिलें। 50 प्रतिशत डीडीटी पाउडर का पानी में 5 प्रतिशत निलम्बन बनाकर (डीडीटी पानी में नहीं घुलती इसलिए ऐसा पाउडर बनाया जाता है जिसका पानी में निलम्बन या सस्पेन्सन बन जाए) दो मिलिलिटर (जिससे 100 मिलिग्राम डीडीटी का असली सक्रिय तत्व होता है) प्रतिवर्ग फुट के हिसाब से छिड़काव करने पर दीवारों पर 100 मिलिग्राम डीडीटी (सक्रिय तत्व, एक्टिव इनग्रेडिएण्ट) आ जाती है। यह छिड़काव दीवारों पर लगभग दस सप्ताह अथवा ढाई महीने तक प्रभावी रहता है अर्थात दीवारों पर बैठने वाले मच्छरों को मारता रहता है। एक साल में इस प्रकार दो बार डीडीटी छिड़की जाती है जिसे डीडीटी के दो चक्र (टू राउण्डस् ऑफ स्प्रे) कहते हैं। इसी प्रकार 6.5 प्रतिशत गामा आइसोमर वाली बीएचसी या एचसीएच 20 मिलिग्राम प्रतिवर्ग फुट के हिसाब से छिड़की जाती है (डीडीटी की दीवार पर की मात्रा का पाँचवा हिस्सा)। बीएचसी दीवारों पर लगभग छः हफ्ते तक प्रभावी रहती है। इसके छिड़काव के वर्ष में तीन चक्र दिए जाते हैं। मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के चार स्पष्ट चरण थे– प्रारम्भिक अथवा उपक्रमात्मक चरण (प्रिपेरेटरी फ़ेज), आक्रमण चरण (अटेक फ़ेज), दृढ़ीकरण चरण (कन्सोलिडेशन फेज़) एवं अनुरक्षण-चरण (मेन्टिनेन्स फेज़)। प्रत्येक चरण में होने वाली विभिन्न गतिविधियों को स्पष्ट रूप से सुनिश्चित किया गया और प्रत्येक चरण के लिए निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के पश्चात् कार्यक्रम के अगले चरण में प्रवेश किया गया।

डीडीटी छिड़काव से मलेरिया नियन्त्रण में उल्लेखनीय सफलता मिली और सन् 1953 में साढ़े सात करोड़ मलेरिया रोगियों की संख्या सन् 1965 में घटकर केवल एक लाख रह गई। डीडीटी युग में सन् 1961 में तो यह केवल पचास हजार ही रह गई थी। अस्तु, उपर्युक्त अवधि में हुए लाभ अधिक देर तक नहीं टिक सके। सन् 1966 से ही व्यवधान पड़ने आरम्भ हो गए। इसका मूल कारण विदेशों द्वारा डीडीटी की आपूर्ति में कमी और मलेरिया के बार-बार होने वाले केन्द्रिक अथवा नाभिक (फोकल) प्रकोप थे। मलेरिया नियन्त्रण उपाय में सुधारों के बावजूद मलेरिया रोगियों की संख्या बढ़ने लगी। सन् 1976 में मलेरिया रोगियों की कुल संख्या पैंसठ लाख हो गई जो कि सन् 1960 के बाद की सर्वोच्च रोगी संख्या थी। सातवें दशक में मलेरिया के पुनः प्रकोप के अनेक कारण बताए जाने लगे। इन में सर्व प्रमुख तकनीकी कारण मलेरिया-वाहक मच्छर में कीटनाशियों के विरुद्ध प्रतिरोध प्रकट

होना था।

यह कीटनाशी प्रतिरोध वास्तव में है क्या? यह मच्छरों की कुछ नस्लों में कीटनाशी विशेष की उस मात्रा को सहन करने की क्षमता है जो उसी नस्ल के अधिकांश सदस्यों के लिए घातक (लेथल) होती है। कीटनाशियों के विरुद्ध प्रतिरोध क्रमिक अनुकूलन के फलस्वरूप प्रकट नहीं होता बल्कि उपयोग में लाए जाने वाले कीटनाशी द्वारा प्रतिरोधी जीन (रेजिस्टेण्ट जीन) के प्रवरण (सेलेक्शन) द्वारा प्रकट होता है। कीटनाशी एक प्रवरण अभिकर्ता (सेलेक्टिव एजेण्ट) के रूप में कार्य करता है– एक उत्परिवर्तनकारी अभिकर्ता (म्यूटेजेनिक एजेण्ट) के रूप में नहीं। प्रकृति में किसी भी कीट-समष्टि में कीटनाशी प्रतिरोध की पूर्वानुकूलित (प्रिएडेप्टडे) प्रक्रिया जैव एवं अजैव आविषों (टॉक्सीकेण्ट) से संघर्ष का परिणाम है जिससे कीटों में बचे रहने की विभिन्न विधियाँ विकसित हो जाती हैं। प्रवरण (सेलेक्शन) तभी सम्भव है जब किसी समष्टि के कुछ सदस्यों में प्रतिरोध की आनुवंशिक-क्षमता हो।

प्रवरण किस प्रकार घटित होता है? कौन-कौन से तथ्य हैं जिनके माध्यम से यह अस्तित्व में आता है?

प्रतिरोध (रेज़िस्टेन्स) का कारण कीटों का कीटनाशियों से सम्पर्क है। यह सम्पर्क कीट-समष्टि विशेष को कीटनाशी-विशेष के विरुद्ध प्रतिरोधी बना देता है। मच्छरों के सन्दर्भ में इस कीटनाशी-विशेष का प्रयोग जल में पाई जाने वाली डिम्बकीय अवस्थाओं पर (लार्वल स्टेजेज़) या वयस्क मच्छरों पर कीटनाशी छिड़काव द्वारा हो सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में वयस्क मच्छरों को मारने के लिए घरों और पशुशालाओं में कीटनाशी छिड़काव किया जाता है। यहाँ पर कीटनाशी वयस्क मच्छर-समष्टि पर दबाव डालता है। भारत के मलेरिया विरोधी अभियानों में घरों के भीतर और उनके आस-पास वयस्क मच्छरों को मारने वाले कीटनाशियों का छिड़काव किया जाता है। घरों के भीतर छिड़के जाने वाले कीटनाशी दो प्रकार के होते हैं– अवशिष्ट (रेज़िडुअल) और अनवशिष्ट (नॉन-रेज़िडुअल)। पायरेथ्रम-सार (पायरेथ्रम एक्सट्रेक्ट) एक अनवशिष्ट कीटनाशी है जिसका प्रभाव तात्कालिक होता है अर्थात् यह उसी समय मच्छरों को धराशायी कर देता है। इस कारण लक्ष्य-मच्छर समष्टि (टारगेट मॉस्क्यूटो पॉप्यूलेशन) में प्रतिरोध प्रकट नहीं होता। डीडीटी, बीएचसी, मैलाथिओन, फेनिट्रोथिओन आदि अवशिष्ट कीटनाशी हैं जो कई सप्ताह तक इनसे छिड़की गई दीवारों आदि पर बैठने वाले मच्छरों को मारते रहते हैं। इस प्रकार के कीटनाशियों के उपयोग में मच्छरों की प्रतिरोधी-नस्लों के प्रवरण (सेलेक्शन) की सम्भावना अधिक होती है।

यह अनुभव किया गया है कि डिम्बकीय अथवा लार्वीय अवस्थाओं (लार्वल स्टेजेज़) में वयस्क अवस्थाओं की अपेक्षा कीटनाशियों का प्रयोग अधिक प्रभावकारी रहता है। इसका कारण यह है कि जल में लार्वे कीटनाशियों के निरन्तर सम्पर्क में रहते हैं। वयस्क मच्छर तो थोड़ी देर दीवार पर बैठकर उड़ जाता है। लार्वे कीटनाशी घुले अथवा युक्त पानी को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते। इस निरन्तर सम्पर्क के फलस्वरूप सभी सुग्राही लार्वे समाप्त हो जाते हैं। लार्वों पर कीटनाशियों के प्रभाव से वयस्कों में प्रतिरोध की अभिव्यक्ति विभिन्न मच्छर जातियों में अलग-अलग होती है तथा कीटनाशियों के प्रकार और प्रयोग विधि पर निर्भर करता है। यह मच्छरों में व्याप्त प्रतिरोध-तन्त्र (रेज़िस्टेन्स मेकेनिज़्म) की विशिष्टता के अनुसार होती है।

कीटनाशियों द्वारा डाला गया प्रवरण-दाब (सेलेक्शन-प्रेशर) उसके छिड़काव के अधीन मच्छर-समष्टि में प्रतिरोधी-जीन की बारम्बारता (फ्रीक्वेंसी) बढ़ा देता है। इस प्रकार कीटनाशी प्रतिरोध एक बहु-आयामी प्राकृतिक घटना है जो जैव-रासायनिक (बायोकेमिकल), शरीर-क्रियात्मक (फिज़ियोलॉजिकल), आनुवंशिक (जेनेटिकल) एवं पारिस्थितिकीय (इकोलॉजिकल) कारकों पर निर्भर करती है। ये कारक जाति-विशेष एवं भौगोलिक स्थिति के अनुसार घटते-बढ़ते रहते हैं। प्रतिरोधी मच्छर

नस्लें उत्तरजीवी व्यष्टियों (सर्वाइविंग इण्डीविजुअल) के प्रजनन से बढ़ती हैं जिनके ''जिनोम'' (जीन समष्टि) में एक या एकाधिक सम्भावित प्रक्रियाओं से परिवर्तन आ जाता है।

मोटे तौर पर मच्छरों में कीटनाशी-प्रतिरोध तीन प्रकार का हो सकता है– (1) अन्तः शक्ति परक (विगर टोलरेन्स); (2) व्यवहार परक (बिहेवियरिस्टिक); तथा (3) शरीर-क्रियात्मक प्रतिरोध (फिज़ियोलॉजिकल)।

अन्तः शक्ति परक सहनशीलता (विगर टॉलरेन्स) अच्छे आहार, स्वास्थ्य, अथवा अन्य किन्ही कारणों से विभिन्न विषों को सहन करने की क्षमता को कहते हैं। यह अतिरिक्त जीवनी शक्ति का परिणाम होती है। इस प्रकार के मच्छरों की सन्तानें चरम तापमान, आर्द्रता की कमी, अपसामान्य आहार तथा हानिकारक रासायनिक द्वारा उत्पन्न विभिन्न दबावों के पड़ने पर भी जीवित बची रहती हैं।

व्यवहार-परक प्रतिरोध में मच्छर कीटनाशियों की घातक मात्रा के सम्पर्क में आने से अपने आपको बचाता है– ऐसी मात्रा वाले स्थानों पर नहीं बैठता। इनसे बचने के लिए वह अपना व्यवहार बदल लेता है। मच्छरों का व्यवहार-परक-प्रतिरोध कीटनाशियों के प्रति उत्तेज्यता (इरीटेबिलिटी) से भिन्न है। व्यवहार-परक प्रतिरोध में कीटनाशी प्रवरण (इन्सेक्टीसाइड सेलेक्शन) द्वारा अपने को बचाने के लिए व्यवहार बदल लेता है। उत्तेज्यता (इक्साइटिबिलिटी) किसी कीटनाशी विशेष के प्रति मच्छरों का उत्तेजित होकर उनसे दूर उड़ जाना ह। व्यवहार-परक प्रतिरोध मच्छरों की कुछ जातियों में उनके नियन्त्रण की असफलता का कारण हो सकता है किन्तु मच्छर-समष्टियों का अधिकांश शरीर-क्रियात्मक प्रतिरोध द्वारा मलेरिया नियन्त्रण अभियानों को निष्फल कर देता है।

कीटनाशी का मच्छरों की त्वचा में प्रवेश करके उसके मर्म स्थल पर न पहुँच पाना अथवा शरीर क्रिया आदि द्वारा निर्विषीकरण (डिटॉक्सीफिकेशन) हो जाना शरीर क्रियात्मक प्रतिरोध कहलाता है। कीटनाशियों के प्रभाव को निरस्त करने वाली अन्य सम्भावित प्रक्रिया उन्हें वैसे का वैसा ही (बिना अपचयन के) शरीर से बाहर निकाल देना हो सकता है किन्तु आधुनिक संश्लेषित कीटनाशियों (सिन्थेटिक इन्सेक्टीसाइडों) के प्रसंग में यह कोई महत्वपूर्ण प्रक्रिया नहीं है।

जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा भी कीट कीटनाशियों के प्रभाव को निरस्त कर देते हैं। इसके अन्तर्गत मच्छर के शरीर में कुछ ऐसे किण्वक (एनज़ाइम) पाए जाते हैं जो कीटनाशियों को खण्डित करके उनका विष समाप्त कर देते हैं। इनका सम्बन्ध गुणसूत्र-(क्रोमजोम-II) से होता है और मेण्डल के वंशागति (इनहेरिटेन्स) सिद्धान्त के अनुसार पीढ़ी दर पीढ़ी चलते जाते हैं।

भारत में एनोफिलिस वंश की छप्पन जातियाँ पाई जाती हैं जिनमें से दस जातियाँ मलेरिया संचार के लिए उत्तरदायी हैं। इन जातियों में से *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* मलेरिया परजीवी की मुख्य वाहिका है जो ग्रामीण और परिनागरिक क्षेत्रों में सत्तर प्रतिशत मलेरिया रोगियों के लिए जिम्मेदार है। यह मच्छर जाति, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान और श्रीलंका में भी मलेरिया रोग की प्रमुख संचारिका है। बर्मा और नेपाल में मलेरिया संचार में इसकी द्वितीयक भूमिका (सैकेण्डरी रोल) है। *एनोफिलिस स्टीफेन्साई* यद्यपि ग्रामीण और नागरिक दोनों ही क्षेत्रों में पाई जाती है किन्तु यह मुख्यतः शहरों में मलेरिया संचार करती है। पहाड़ों की तलहटियों, पहाड़ियों, वन प्रदेशों आदि पारिस्थितिकीय प्ररूपों (इकोटाइपों) में मच्छरों की विशिष्ट जातियाँ मलेरिया संचार करती हैं।

सन् 1955 में तमिलनाडु के इरोड कस्बे में मलेरिया संचार करने वाली मच्छर जाति *एनोफिलिस स्टीफ़ेन्साई* में कीटनाशी-प्रतिरोध के प्रमाण मिले, किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में मलेरिया की प्रमुख संचारिका मच्छर जाति *एनोफ़िलिस क्यूलिसिफेसीज़* लगभग दस वर्षों तक कीटनाशियों के प्रति सुग्राही बनी रही। इस अवधि में मलेरिया की स्थिति पूरी तरह नियन्त्रण में रही।

04262
COMMUNITY HEALTH CELL
LIBRARY AND DOCUMENTATION UNIT
BANGALORE

यद्यपि कीटनाशी डीडीटी पाउडर का छिड़काव सन् 1946 से ही मलेरिया नियन्त्रण के लिए किया जाने लगा था किन्तु सन् 1955 तक वयस्क मच्छरों में इसके प्रतिरोध की कोई रिपोर्ट नहीं मिली। इसका कारण शायद लार्वो के विरुद्ध डीडीटी का उपयोग न करना था। उस समय एक आशावादी अनुमान यह भी लगाया गया था कि *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* में डीडीटी प्रतिरोधक जीन का अभाव है। अस्तु, सन् 1959 में पहली बार *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* में डीडीटी प्रतिरोध का समाचार मिला। इससे भी पहले सन् 1958 में डायल्ड्रीन के दो छिड़काव चक्रों में ही उसके विरुद्ध प्रतिरोध प्रकट हो गया। इतनी जल्दी प्रतिरोध प्रकट होने के कारण डायल्ड्रीन का मलेरिया नियन्त्रण-कार्य में प्रयोग बन्द कर दिया गया। सन् 1962 में बीएचसी के विरुद्ध भी प्रतिरोध प्रकट होने लगा।

सन् 1967 तक देश के अनेक भागों से मच्छरों में डीडीटी और बीएचसी के विरुद्ध व्यापक प्रतिरोध के समाचार मिलने लगे। सन् 1969 में मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम में आर्गेनोफॉसफोरस-वर्ग के कीटनाशी मैलाथिओन का प्रयोग महाराष्ट्र और गुजरात के कुछ जिलों में आरम्भ हुआ जहाँ पर डीडीटी और बीएचसी दोनों के विरुद्ध मच्छरों में प्रतिरोध था। आश्चर्य की बात है कि केवल चार वर्षों में *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* में मैलाथिओन प्रतिरोधी हो गई।

इस समय *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* जाति के मच्छर डीडीटी और बीएचसी के प्रतिरोधी हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश और उड़ीसा में मैलाथिओन प्रतिरोधी पाया गया है। *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* मच्छर जाति भारत के पच्चीस राज्यों और सात केन्द्र शासित प्रदेशों के 450 जिलों में से 286 में केवल डीडीटी के विरुद्ध, 233 में डीडीटी और बीएचसी के विरुद्ध तथा 71 में डीडीटी, बीएचसी और मैलाथिओन के विरुद्ध प्रतिरोधी पाई गई। इसी प्रकार मलेरिया-वाहक शहरी मच्छर जाति *एनोफिलिस स्टीफेन्साई* 84 जिलों में केवल डीडीटी के विरुद्ध, 27 जिलों में डीडीटी और बीएचसी के विरुद्ध और आठ जिलों में डीडीटी, बीएचसी और मैलाथिओन के विरुद्ध प्रतिरोधी पाई गई है। सौभाग्य से अन्य मलेरिया-वाहक मच्छर जातियाँ इस समय भी कीटनाशियों के प्रति सुग्राही (सस्सेप्टिबल) हैं। कृषि क्षेत्र में कीटनाशियों के प्रयोग से भी मच्छरों में प्रतिरोध आ जाता है। एक सर्वेक्षणानुसार देश में निर्मित होने वाले कीटनाशियों में से 90 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं और इनमें से भी 90 प्रतिशत प्रमुखतया कपास एवं अन्य नकदी फसलों के बचाव में इस्तेमाल होते हैं। मध्य अमेरिका के अल-सल्वादोर और निकारागुआ की मलेरिया-वाहक मच्छर जाति *एनोफिलिस अल्बिमानस* अ-लक्ष्येतर (नॉन-टार्गेट) रूप से कृषि क्षेत्र में कीटनाशियों के प्रयोग के कारण उनकी प्रतिरोधी हो गई। यह अ-लक्ष्येतर (नॉन-टार्गेट) प्रतिरोध अभिव्यक्ति का क्लासिक उदाहरण है। यह मच्छर खेतों में और आस-पास भरे पानी में प्रजनन करता है।

धीरे-धीरे परवर्ती काल में ऑर्गेनोफॉसफोरस, कार्बामेट और सिन्थेटिक पायरेथ्राइड वर्ग के कीटनाशियों के विरुद्ध भी प्रतिरोध प्रकट होने लगा। भारत में आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और उड़ीसा में भी कृषि क्षेत्र में कीटनाशी प्रयोग के कारण *एनोफिलिस क्यूलिसिफेसीज़* जाति उनकी प्रतिरोधी हो गई है, किन्तु यह प्रतिरोध केवल ऑर्गेनोफॉसफोरस वर्ग के मैलाथिओन के विरुद्ध ही है, *एनोफिलिस अल्बिमानस* के समान अन्य कीटनाशी-वर्गों के विरुद्ध नहीं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष की प्रमुख मलेरिया-वाहक मच्छर जाति डीडीटी, बीएचसी के विरुद्ध व्यापक रूप से प्रतिरोधी है। कुछ क्षेत्रों में यह मैलाथिओन प्रतिरोधी भी है किन्तु फेनिट्रोथिओन फेनथिओन, प्रोपोक्सर, डेल्टामेथ्रिन जैसे अन्य वैकल्पिक कीटनाशी अभी ऐसे हैं जिनके विरुद्ध इसमें प्रतिरोध प्रकट नहीं हुआ। इसलिए कीटनाशियों द्वारा मलेरिया-नियन्त्रण की सम्भावना बनी हुई है □

हिन्दी प्रस्तुति : **डॉ० सुरेन्द्र कुमार शर्मा**

राजस्थान के पोखरण क्षेत्र में मलेरिया की महामारी

डॉ० राघव प्रसाद शुक्ल

राजस्थान में जैसलमेर ज़िला थार मरुस्थल का एक बड़ा भाग है। यह अपने ऐतिहासिक स्मारकों की सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। जैसलमेर का कुल क्षेत्रफल लगभग चालीस हजार वर्ग किलोमीटर है। इसके पश्चिमी छोर पर पाकिस्तान की सीमा, पूर्व में जोधपुर, उत्तर में बीकानेर तथा दक्षिण में बाडमेर स्थित है। इस जिले में पोखरण, नाचना और सांगड़ तीन खण्ड प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 9 उच्चीकृत (अपग्रेडेड) उपकेन्द्र, दो सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, 12 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 73 उपकेन्द्र तथा दो ज्वर उपचार डिपो हैं। आबाद ग्रामों की कुल संख्या 499 है। यहाँ ग्रीष्मकालीन अधिकतम तापमान 48 डिग्री सेण्टीग्रेट तथा शीतकालीन निम्नतम तापमान 5 डिग्री सेण्टीग्रेट है। जिले की कुल जनसंख्या लगभग साढ़े तीन लाख है तथा जनसंख्या का घनत्व 9 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जैसलमेर जिले की कुल 38 लाख हेक्टेयर जमीन का केवल 5.45 प्रतिशत भाग ही खेती के काम में लाया गया है। यह क्षेत्र 10 वर्षों में से सात वर्ष सूखा ही रहा है। इसके परिणामस्वरूप अधिकांश किसान खेती की अपेक्षा पशु-पालन, पशु-व्यापार पर निर्भर हो गए हैं। यही उनके जीविकोपार्जन का एक महत्वपूर्ण साधन है। जिले में वर्षा का सामान्य औसत 165 मिमी है किन्तु अक्टूबर 94 में जैसलमेर तहसील में औसत 255.6 मिमी वर्षा हुई। यहाँ की जमीन रेतीली है जिसमें पानी रोकने की क्षमता बहुत कम पायी जाती है।

हाल ही में राजस्थान के पोखरण तथा जैसलमेर क्षेत्रों में मलेरिया का भीषण प्रकोप हुआ। पोखरण की समुद्र तल से ऊँचाई 224 मीटर है। इसके पूर्व में जोधपुर, पश्चिम में हेडक्वार्टर जैसलमेर, उत्तर में पंचायत समिति जैसलमेर तथा दक्षिण में बाडमेर है। पोखरण तहसील में कुल 39 पंचायतें तथा 127 गाँव हैं। यहाँ की जनसंख्या का घनत्व 18 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। अधिकाँश गाँवों में औसत से तीन गुनी अधिक वर्षा होने से तालाबों, बावडियों, पोखरों, नालियों, गड्ढों आदि में पानी भर गया। इन पानी से भरे स्थानों में मलेरिया-वाहक मच्छर के पनपने के कारण अगस्त से नवम्बर 1994 तक मलेरिया का भीषण प्रकोप हुआ। इस प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की कुल जनसंख्या 1,27,825 है तथा यह 3600 वर्ग किमी क्षेत्रफल में फैला हुआ है। पोखरण ब्लाक में एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र है, इसके अन्तर्गत 5 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 3 उच्चीकृत उपकेन्द्र तथा 24 परिवार कल्याण केन्द्र हैं। यहाँ की आबादी में मुख्यतया हिन्दू और मुसलमान हैं। इनका प्रमुख पेशा खेती एवं पशुपालन है। पोखरण तहसील से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार पानी के मुख्य साधनों की संख्या निम्न प्रकार हैः—

ट्यूबवेल 40, कुएँ 749, तालाब 14, पोखर 125, हैंडपम्प 500, हौज़ 200, घरेलू टॉके 17,286, सार्वजनिक टैंक 76। इस क्षेत्र में खारे पानी की चार झीलें हैं जो करीब 1 से 5 किमी क्षेत्रफल में फैली हुई हैं। भूमिगत जल की सतह 200 से 500 फीट पर है।

मलेरिया अनुसंधान केन्द्र, दिल्ली ने राष्ट्रीय

मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के सहयोग से राजस्थान में मलेरिया महामारी के कारणों का पता लगाने, मलेरिया-संवाहक मच्छरों का विस्तृत अध्ययन करने तथा मलेरिया रोग के बारे में अन्य जानकारियों के लिए एक वैज्ञानिक दल राजस्थान के मलेरिया-ग्रस्त स्थानों में भेजा। इस वैज्ञानिक दल ने मच्छरों के उत्पत्ति स्रोतों की खोज, मलेरिया संवाहक मच्छरों की पहचान एवं उनकी जातीय-संघटना (स्पीसीज़ कंपोजीशन्स), उनके विश्राम करने के स्थानों, मलेरिया रोगियों के रक्त की जाँच तथा महामारी के कारण व अन्य महामारी अन्वेषण-परक कार्य किए।

कीट वैज्ञानिक अध्ययन (एण्टोमोलॉजिकल स्टडीज़)

1. मच्छर प्रजनन-स्थलों का सर्वेक्षण : पोखरण राजस्थान थार का एक बड़ा क्षेत्र है, जहाँ स्थायी रूप से पानी एकत्रित होने के स्थान कम हैं, क्योंकि प्रतिवर्ष बरसात न होने से पोखरें, तालाब, खड्ड, नालियाँ आदि सूख जाते हैं। घरों में तथा उनके आस-पास और गाँव के चारों ओर मच्छरों के प्रजनन के मुख्य स्थान निम्नलिखित हैं :– घरों में पाई जाने वाली टंकियाँ (इन्हें टाँके कहते हैं), सार्वजनिक स्थानों पर बने हौज तथा सामूहिक टंकियाँ (चित्र 1) जिनसे छोटी-छोटी पाइपों द्वारा पीने का पानी भेजा जाता है। गाँव के बाहर बड़े तालाब हैं जहाँ मवेशी पानी पीते हैं (चित्र 2)। मौसमी एवं बारहों मास पानी भरे तालाब (चित्र 3) तथा घर के अन्दर मिट्टी के बर्तन आदि हैं। मादा मच्छर इन्हीं जलपूर्ण स्थानों पर अण्डे देती है जिससे 7 से 10 दिन में नए मच्छर बन कर मनुष्य/जानवरों का रक्तपान करते हैं।

पोखरण ब्लाक के तीन गाँवों–भणियाना, लावा, घुडसर में मच्छर प्रजनन स्थानों के सर्वेक्षण में एनोफिलिस मच्छरों के लार्वों की अधिक संख्या टैंकों में पाई गई। यहाँ कुल चार प्रकार की मच्छर जातियाँ हैं जिनमें से दो–*एनो० क्यूलिसिफ़ेसीज एनो० स्टीफ़ेन्साई*–मलेरिया संवाहक हैं। इन जातियों के प्रजनन स्थलों की प्रतिशत संख्या से पता चला है कि *एनो० क्यूलिसिफेसीज़* शत-प्रतिशत उथले गड्ढों में, 69 प्रतिशत तालाबों में तथा 52 प्रतिशत केवल टैंकों में प्रजनन करती है। *एनो० स्टीफ़ेन्साई* जाति टैंकों में ही पाई गई जबकि *एनो० सबपिक्ट्स* तालाबों और टैंकों में बराबर के अनुपात में पाई गई। *एनो० एन्युलरिस* की उत्पत्ति तालाबों में थोड़ी पाई गई। क्यूलैक्स मच्छरों के लार्वे बहुत कम अनुपात में केवल टॉकों में ही पाए गए। ''टॉकों'' में पाई गई तीन एनोफिलिस जातियों में से दो मलेरिया की संवाहिका हैं।

2. वयस्क मच्छरों का सर्वेक्षण : घरों में तथा उनके बाहर मच्छरों के विश्राम स्थलों/स्थानों का सर्वेक्षण किया गया। दीवारों की दरारों, कच्चे मकान एवं झोपड़ियों की छतों एवं पशुशालाओं (चित्र 4) टंगे हुए कपड़े, बिस्तरों आदि स्थानों पर मच्छर विश्राम करते हुए पकड़े गए। *एनो० क्यूलिसिफेसीज़* एवं *एनो० सबपिक्ट्स* का औसत प्रति व्यक्ति प्रति घण्टा घनत्व पशुशालाओं में अधिक पाया गया तथा *एनो० स्टीफ़ेन्साई* का घनत्व उससे कम। *एनोफिलिस एन्युलरिस* का घनत्व सबसे कम पाया गया। घर के बाहर मच्छरों के विश्राम- स्थल कम हैं। बाहर गोबर के उपलों, पत्थरों की संधियों (चित्र 5) आदि में *एनो० क्यूलिसिफेसीज़* एवं *एनो० सबपिक्ट्स* का औसत प्रति व्यक्ति प्रति घण्टा घनत्व करीब-करीब बराबर पाया गया, जबकि *एनो० स्टीफ़ेन्साई* का कम तथा *एनो० एन्युलरिस* का इन स्थानों पर बिल्कुल नहीं पाया गया।

एनो० क्यूलिसिफ़ेसीज़ एवं *एनो० स्टीफ़ेन्साई* के वयस्क मच्छरों की लार ग्रन्थियों का विच्छेद करने पर मलेरिया के बीजाणुज़ (स्पोरोज़ोइट) नहीं मिले। ऐसा इसीलिए सम्भव है कि इन दिनों संवाहक मच्छरों की संख्या काफी कम रही, फलस्वरूप संवाहक मच्छरों में भी यह परजीवी नहीं पाए गए।

उक्त तीनों गाँवों का सर्वेक्षण करके ज्वर पीड़ित व्यक्तियों की रक्त पट्टिकाएँ बनाई गई (चित्र 6)।

चित्र 1 : जमीन के अन्दर का खुला टैंक

चित्र 2 : जानवरों के पीने के पानी का खुला टैंक (होज)

चित्र 3 : पानी से भरा बड़ा तालाब

चित्र 4 : जानवरों के ठहरने का स्थान एवं मच्छरों की खोज

चित्र 5 : घर के बाहर गोबर के उपलों व पत्थर की तहों पर मच्छरों के छिपने के स्थान

चित्र 6 : घुडसर गाँव में रक्त पट्टिकाएँ बनाना

विभिन्न उम्र एवं लिंग के लोगों की कुल 734 रक्त पट्टिकाएँ बनीं। इनमें 441 मलेरिया रोग से पीड़ित लोगों में *प्लाज़्मोडियम फैल्सीपैरम* के 419 तथा *प्लाज़्मोडियम वायवैक्स* के 22 रोगी थे।

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में जान लेवा फैल्सीपैरम मलेरिया का ही ज्यादा प्रकोप था जिसके कारण इतनी अधिक संख्या में लोग मरे। पोखरण के प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार उस स्वास्थ्य केन्द्र में 37 रोगियों की मृत्यु हुई जबकि अनौपचारिक आंकड़ों के अनुसार तीन सौ से अधिक लोग इस क्षेत्र में महामारी के शिकार हुए थे। इन रोगियों में ज्यादा मरने वाले रोगी फैल्सीपैरम मलेरिया के ही थे। अन्वेषण-विश्लेषण द्वारा पता चला कि 5 से 9 वर्ष के बच्चे इस रोग से ज्यादा आक्रान्त हुए। इन गाँवों में 15 से 20 प्रतिशत तक 2 से 9 वर्ष के बच्चों की तिल्ली जाँची गई जिनमें औसत 87.7 प्रतिशत बालकों की तिल्ली बढ़ी हुई थी।

यद्यपि पोखरण क्षेत्र में मच्छरों की उत्पत्ति के स्रोत प्रायः कम पाए गए हैं किन्तु हमेशा पानी से भरे रहने वाले घरों के टॉकें, नालियाँ, तालाब आदि में मच्छरों की उत्पत्ति ज़्यादा है। पिछले वर्ष लगातार एक महीने तक पानी बरसते रहने के कारण सारे क्षेत्र में कई नए प्रजनन-स्थल पैदा हो गए, जिनमें अन्य मच्छरों के साथ मलेरिया-संवाहक मच्छरों की बहुतायत थी। पोखरण पिछले कई वर्षों से मलेरिया से प्रभावित क्षेत्र रहा है। इस अवधि में यहां मलेरिया-संवाहक मच्छरों के बढ़ने से मलेरिया रोगियों की संख्या में वृद्धि हुई जिसने मलेरिया महामारी का रूप ग्रहण कर लिया। कई स्थान ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं इसलिए देश-विदेश के पर्यटकों का बड़ी संख्या में यहाँ आना-जाना लगा रहता है। सम्भवतः मलेरिया महामारी फैलने का एक यह भी कारण हो सकता है। मलेरिया-ग्रस्त इलाकों से पर्यटकों का आना मच्छरों को इस रोग के प्रसार का अवसर देता है।

मलेरिया महामारी के कारण

1. पोखरण के प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के समस्त गाँवों में पिछले तीन साल से कीटनाशी दवाईयों का कोई छिड़काव नहीं हुआ।
2. समयबद्ध व विधिवत् तरीके से ज्वर-ग्रस्त व्यक्तियों का सर्वेक्षण नहीं हुआ।
3. सही ढंग से मलेरिया पीड़ित रोगियों का आमूल उपचार नहीं हुआ।

मलेरिया की रोकथाम सम्बन्धी सुझाव

1. इन क्षेत्रों में स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा मलेरिया प्रदर्शनी लगाकर आम जनता को रोग के कारणों तथा इस रोग से बचाव की जानकारी देनी चाहिए।
2. पानी रुकने के स्थायी स्थानों जैसे—टॉकें, टंकियाँ तथा तालाबों में लार्वाभक्षी मछलियों को डालना चाहिए जिससे कि वे मलेरिया-संवाहक मच्छरों के लार्वो का सफाया कर सके।
3. घर के टॉकों, मटकों तथा घड़ों को हमेशा ढक कर रखना चाहिए जिससे मादा मच्छर अण्डे देने के लिए इनमें प्रवेश न कर सके।
4. मलेरिया घोषित रोगी का तुरन्त एवं आमूल उपचार करना चाहिए, अन्यथा उन मलेरिया परजीवियों के भण्डार से मलेरिया-वाहक मच्छर रोग फैला सकते हैं।

महामारी के बाद नवम्बर 1994 तक कीटनाशक दवाईयों के अधिक छिड़काव तथा जाड़े का मौसम आरम्भ होने के कारण मच्छरों की संख्या में काफी कमी आई। इससे मलेरिया का संचार (ट्रांसमिशन) काफी कम हो गया, परन्तु मलेरिया पीड़ित रोगियों का यदि उचित व आमूल उपचार समय से न हुआ तो इस बीमारी के पुनः फैलने की आशंका बनी रहेगी ☐

मलेरिया परजीवी की जैव-रासायनिकी

दिनेश चन्द्र

मलेरिया परज़ीवी (पैरेसाइट) एक बहुआयामी आदिजीवी (प्रोटोज़ोआ) है। अपने जीवनकाल में यह अपना रूप ही नहीं अपितु अपना परपोषी (होस्ट) भी बदलता है। यह परजीवी अपना जीवन-चक्र दो परपोषियों (होस्टों) में पूरा करता है— एक कशेरुकी (वर्टीब्रेट) और दूसरा अकशेरुकी (इन-वर्ट्रीब्रेट)। एनोफिलिस वंशीय मादा मच्छर मलेरिया परजीवी की अंत्य-परपोषक (डेफिनिटिव होस्ट) है अर्थात इसी परपोषी में मलेरिया परजीवी की नर और मादा लैंगिक अवस्थाएँ पाई जाती हैं और उनका युग्मन होकर बीजाणुज (स्पोरोज़ोइट) बनते हैं। मादा-मच्छर इन बीजाणुजों को मनुष्य का रक्त चूसते समय उसके शरीर में प्रविष्ट कर देती हैं। मनुष्य मलेरिया परजीवी का मध्यस्थ-पोषी (इण्टरमीडिएट होस्ट) है क्योंकि उसके शरीर में बीजाणुज, पोषाणु (ट्रोफोज़ोइट), खण्डप्रसू (शायज़ोण्ट) एवं खण्डजाणु (मीरोज़ोइट) अवस्थाएँ पाई जाती हैं जो अलैंगिक (एसैक्सुअल) हैं।

जैव-रासायनिकी के अन्तर्गत हम जीव अथवा प्राणी के भीतर होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं। इसमें शरीर के भीतर ऊर्जा कैसे उत्पन्न होती है, उसका स्थानान्तरण किस प्रकार होता है, शरीर में आहार के चयापचयन (मेटाबोलिज़्म) के पथ (पाथवेज़) क्या हैं, शरीर का निर्माण करने वाली प्रोटीन का संश्लेषण (सिन्थेस्टिस) किस प्रकार होता है, उसकी कोशिका-विभेदन (सेल-डिफरेंशिएशन) में क्या भूमिका है, डीएनए और आरएनए जैसे कार्बनिक महा-अणु (मैक्रोमोलिक्यूल) की रचना एवं विभाजन किस प्रकार होता है, उनसे प्रोटीनों की रचना और आणुवंशिक जानकारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी किस प्रकार प्राप्त होती है आदि विषयों पर विचार करते हैं और जीवन के रहस्य को जानने का प्रयास करते हैं।

कोशिका के भीतर महा-अणु (मैक्रोमोलिक्यूल) पाए जाते हैं जिनका आणिवक भार (मोलिक्यूलर वेट) बहुत अधिक होता है। ये महा-अणु प्रायः तीन वर्गों के अन्तर्गत आते हैं— प्रोटीन, न्यूक्लेइक एसिड तथा कार्बोहायड्रेट (शर्करा इत्यादि)। मलेरिया परजीवी में पाए जाने वाले इन महा-अणुओं में परस्पर क्या सम्बन्ध है और वे अपनी परपोषी लाल-रक्त-कणिका से किस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं?— यह जानना अत्यन्त आवश्यक है।

मशक-दंश (मॉस्क्यूटो-बाइट) से संक्रमित मच्छर की लार ग्रन्थियों में विद्यमान बीजाणुज मानव रक्त में प्रवेश करते हैं और रक्त प्रवाह से वे शरीर के विभिन्न अवयवों के ऊतकों में पहुँच जाते हैं। लाल रक्त कणिकाओं में प्रवेश करके मलेरिया परजीवी अपना अलैंगिक विभाजन द्वारा खण्डजाणुओं (मीरोज़ोइट्स) से लाल रक्त कणिंका को भर देते हैं जिसके फटने पर ये खण्डजाणु (मीरोज़ोइट) मुक्त हो जाते हैं और नई रक्त कणिकाओं पर आक्रमण करके उनको नष्ट करते हैं।

प्लाज़्मोडियम परजीवी की जैव-रासायनिक जानकारी का अधिकांश भाग कोशिका में बढ़ते हुए परजीवी से प्राप्त हुआ है। मनुष्य की लाल रक्त कणिकाओं के भीतर होने

वाली परजीवी अवस्थाएँ ही रोग की अभिव्यक्ति करती हैं।

खण्डजाणु (मीरोज़ोइट) का मनुष्य की लाल रक्त कणिका पर आक्रमण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा आक्रमणकारी खण्डजाणु लाल रक्त कणिका को पहचान लेता है और कणिका के भीतर प्रवेश करने से पहले एक विशेष विधि से उसके साथ जुड़ जाता है। वैसे तो खण्डजाणु अपने शरीर के किसी भाग द्वारा लाल रक्त कणिका से जुड़ सकता है किन्तु प्रवेश करते समय वह अपने शिखाग्र भाग का ही प्रयोग करता है जिसमें सूक्ष्मावयव अवस्थित होते हैं।

परजीवी और लाल रक्त कणिका दोनों की सतहों पर कुछ विशिष्ट ग्राही (रिसेप्टर) होते हैं। मनुष्य की लाल रक्त कणिका पर *प्लाज़्मोडियम वायवैक्स* जाति के मलेरिया परजीवी का ग्राही होता है जो डफी रक्त वर्ग (ब्लड ग्रुप एफ-व्हाई, एफ-व्हाई) के प्रतिजन से सम्बद्ध होता है। जिस मनुष्य की लाल रक्त कणिका डफ़ी रक्त वर्ग की नहीं होती उस पर मलेरिया परजीवी के खण्डजाणु आक्रमण नहीं करते। यदि डफ़ी रक्त वर्ग वाली लाल रक्त कणिका के ग्राहियों को काइमोट्रिप्सिन नामक प्रकिण्व अथवा एनज़ाइम की क्रिया से घोलकर निकाल दिया जाए तो खण्डजाणु उस पर आक्रमण नहीं करते। लाल रक्त कणिकाओं पर *प्लाज़्मोडियम फैल्सीपैरम* के ग्राही (रिसेप्टर) ग्लाइकोफ़ोरिन-ए तथा ग्लाइकोफ़ोरिन-बी तथा सिआलो ग्लायको प्रोटीन हैं। जिन रक्त कणिकाओं में सिआलो प्रोटीन नहीं होती जैसे ईएन(ए) उन पर मीरोज़ोइट कभी आक्रमण नहीं करते।

मलेरिया परजीवी एक परजीवी-भासी (पैरेसाइटो-फोरस) रिक्तिका (वैक्यूओल) कला (मेम्ब्रेन) से आवृत रहता है। इसको संक्षिप्त रूप में पीवीएम कहते हैं। जैसे-जैसे परजीवी का आयतन बढ़ता है पैरेसाइट वैक्यूओल कला (पीबीएम) भी बढ़ती जाती है। किन्हीं परजीवियों की इस कला (मेम्ब्रेन) में एडिनोसीन ट्राइ-फॉस्फेटेज़ प्रकिण्व (एनज़ाइम) एक स्थान पर केन्द्रित हो जाता है। परजीवी की बढ़न के साथ कला (मेम्ब्रेन) पर इस प्रकिण्व (एनज़ाइम) का पुनर्विन्यास (रि-ओरिण्टेशन होता जाता है। लाल रक्त कणिका की बाहरी सतह पर पाया जाने वाला निकोटिनामाइड एडिनीन डाइन्यूक्लि-ओटाइड प्रकिण्व-परजीवी की पीवी मेम्ब्रेन (कला) की भीतरी सतह पर नहीं अपितु बाहरी सतह पर पाया जाता है।

लाल रक्त कणिकाओं की आयु-वृद्धि का प्रभाव भी परजीवियों के आक्रमण पर पड़ता है। उदाहरण के लिए *पी० वायवैक्स* और *पी० ओवेल* जाति के मलेरिया परजीवी कम उम्र वाली रक्त कणिकाओं पर आक्रमण करते हैं और उनके भीतर पाए जाते हैं। *पी० मलेरी* जाति का मलेरिया परजीवी बड़ी उम्र वाली लाल रक्त कणिकाओं में पाया जाता है जबकि *पी० फैल्सीपैरम* जाति का मलेरिया परजीवी किसी भी उम्र की लाल रक्त कणिका पर आक्रमण कर सकते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे बड़ी आयु वाली रक्त कणिकाओं की कला पर विशिष्ट ग्राहियों (स्पेसेफिक रिसेप्टरों) का नष्ट हो जाना, चयापचयन (मेटाबोलिज़्म) से सक्रियता समाप्त हो जाना, बड़ी उम्र वाली लाल रक्त कणिकाओं की कला (मेम्ब्रेन) का कड़ा पड़ना आदि जिसके कारण परजीवी खण्डजाणुओं का उनमें प्रवेश नहीं हो पाता। वैसे तो यह बात अच्छी तरह से पता है कि बड़ी उम्र वाली लाल रक्त कणिका की कला पर मिलने वाली ग्राही सियालिक एसिड (न्यूरामिनिक एसिड) की मात्रा कम होती है क्योंकि कला के साथ ये प्रोटीनें भी नष्ट होती जाती हैं किन्तु सिआलेटेड ग्लायको फोरिन के घनत्व (डेन्सिटी) में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

पी० फैल्सीपैरम से आक्रान्त लाल रक्त कणिकाओं पर छोटी-छोटी घुण्डियाँ (नॉब्स) होती हैं। इन घुण्डियों की उपस्थिति फैल्सीपैरम की विशिष्ट पहचान है। इनके द्वारा फैल्सीपैरम से आक्रान्त लाल रक्त कणिकाएँ रक्तवाही कोशिका की भीतरी सतह पर चिपक या अटक जाती हैं और रक्त प्रवाह में रुकावट डालती हैं। इससे फैल्सीपैरम मलेरिया जानलेवा बन जाता है। परजीवीग्रस्त रक्त

कणिकाएँ विशेष रूप से मस्तिष्क की केशिकाओं (केपिलरीज़) को बड़ी संख्या में आक्रान्त करती हैं। इसीलिए *पी० फैल्सीपैरम* को मस्तिष्क मलेरिया भी कहते हैं जो प्राणघाती होता है। ये घुण्डियाँ हिस्टिडीन नामक एक समृद्ध प्रोटीन से बनी होती हैं।

वास्तव में लाल रक्त कणिकाएँ मलेरिया परजीवी के लिए भोजन का बड़ा समृद्ध स्रोत हैं। भोजन प्रदान करने के अतिरिक्त लाल रक्त कणिका में परजीवी सुरक्षित भी रहता है और उसे भक्षक-कोशिकाएँ (फेगोसाइट्स) खा नहीं पातीं। परजीवी को कोशिका से प्यूरीन और निकोटिनामाइड-एडिनीन-डायन्यूक्लिओटाइड-फॉसफेट (एनएडीपी) का आहार मिलता है। लाल रक्त कणिकाओं के भीतर सुरक्षित होने के कारण प्लाज़्मा में वर्तमान प्रतिपिण्ड (एण्टीबॉडी) भी परजीवी को नष्ट नहीं कर पाते।

मलेरिया परजीवी परपोषी लाल रक्त कणिका की प्लाज़्मा-कला (प्लाज़्मा-मेम्ब्रेन) से क्रिया-प्रतिक्रिया करता है। इसके कारण कला में संरचनात्मक परिवर्तन आ जाते हैं। उसमें पारगामिता (परमिबिलिटी) भी बढ़ जाती है।

लाल रक्त कणिका कला पर प्रोटीन से बना एक जाल सा होता है जिसे कला-पंजर (मेम्ब्रेन स्केलेटन अथवा साइटोस्केलेटन) कहते हैं। इस पंजर की प्रमुख प्रोटीनों के नाम हैं– एक्टिन, एन्काइरिन, बैण्ड 4.1 (पट्टी 4.1) तथा बैण्ड 4.9 (पट्टी 4.9)। इन प्रोटीनों की लाल रक्त कणिका कला की प्रोटीनों से क्या क्रिया-प्रतिक्रिया करती है इस बारे में काफी कुछ पता है। मलेरिया परजीवी लाल रक्त कणिका की कला और कोशिका पंजर में पाई जाने वाली प्रोटीनों से सम्बद्ध प्रोटीनों का संश्लेषण करता है।

मलेरिया परजीवी से आक्रान्त लाल रक्त कणिकाओं में वसा (लिपिड) की मात्रा सामान्य लाल रक्त कणिका से अधिक होती है। बन्दरों में पाए जाने वाले मलेरिया परजीवी *प्लाज़्मोडियम नोलसाई* में वसा की मात्रा सामान्य लाल रक्त कणिका से तीन से पाँच गुनी होती है। लाल रक्त कणिका में कोलीन युक्त फोस्फोलिपिड फॉस्फेटिडाइल-कोलीन और स्फिनोंमायलिन बाहरी एकल-तह (मोनोलेयर) में होती हैं जबकि एमीनो-फोस्फोलिपिड्स, फॉस्फोटिडाइल इथेनोल एमीन और फोस्फोटिडाइल सेरीन लगभग पूरी तरह से भीतरी एकल-तह (मोनोलेयर) में पाई जाती है।

मलेरिया परजीवी की कला (मेम्ब्रेन) अन-ईस्टरीफाइड फैट्टी एसिड, ट्राइएसाइल ग्लिसरोल, पॉली-ग्लिसरोल तथा पॉली-ग्लिसरोल फॉस्फेटाइडों में अधिक समृद्ध होती है। स्तनियों (मेमल) की लाल रक्त कणिका की कला में पाई जाने वाली फॉस्फेटिडाइल सेरीन (पीएस) मलेरिया परजीवी में नहीं पाई जाती। यद्यपि मलेरिया परजीवी और स्तनियों की लाल रक्त कणिका दोनों में पाई जाने वाली प्रमुख फैट्टी एसिड समान होती है किन्तु प्लाज़्मोडियम कला में सेचुरेटेड (संतृप्त) फॉस्फोलिपिड का अनुपात अधिक होता है और पॉलीअनसेचुरेटेड (असंतृप्त) फैट्टी एसिड का अनुपात कम। परजीवी नए सिरे से फैट्टी एसिड का जैव संश्लेषण (बायोसिन्थेसिस) नहीं कर सकता। वह तो परपोषी की फैट्टी एसिड—विशेषकर ओलेइक एसिड को उपलब्ध कर लेता है।

मलेरिया परजीवी में कार्बोहाइड्रेट के चयापचयन का भी अध्ययन किया गया है। मलेरिया परजीवी की ऊर्जा का प्रमुख स्रोत प्लाज़्मा ग्लूकोज है किन्तु अन्य शर्कराएँ तथा ग्लिसरोल भी इसका स्रोत हो सकते हैं। हाल ही में किए गए अध्ययन से पता चला है कि मलेरिया परजीवी परपोषी की लाल रक्त कणिका की ग्लायकोलाइयिक क्रिया पर आश्रित नहीं है। प्रतीत होता है कि परजीवी अपने आपको परपोषी की शरीर-क्रिया के पर्यावरण में अनुकूलित कर लेता है और परपोषी रक्त कणिकाओं के कार्यों में ऐसा परिवर्तन ला देता है जिससे कि वह अपना अन्तः-कणिका-विकास (इण्ट्राएरिथ्रोसाइटिक डेवलपमेण्ट) पूरा कर सके। मलेरिया परजीवी की कणिकान्तर्गत विकास अवस्थाओं को डी-ग्लूकोज के ऊर्जा स्रोत की उसी भाँति आवश्यकता होती है जिस प्रकार कि परपोषी लाल रक्त कणिका को।

04262

COMMUNITY HEALTH CELL
LIBRARY AND DOCUMENTATION UNIT
BANGALORE

मलेरिया परजीवी की सभी जातियों में ग्लायकोलाइटिक प्रकिण्व (एन्ज़ाइम) होते हैं। हैक्सोकाइनेज़ नामक प्रकिण्व (एनज़ाइम) की क्रिया को मलेरिया की दवा क्लोरोक्वीन और मेपाक्रीन रोकती हैं। क्विनीन नामक मलेरिया की दवा एसिटाइल को-एन्ज़ाइम-ए के निर्माण को रोकती है। डेप्सन (डीडीएस) लाल रक्त कणिका के भीतर ग्लूकोज का संवहन रोकती है। मेपाक्रीन 6-फोस्फोफ्रक्टोकाइनेज़ नामक प्रकिण्व की क्रिया में बाधक होती है।

लाल रक्त कणिका का मुख्य कार्य शरीर की विभिन्न कोशिकाओं और ऊतकों में ऑक्सीज़न पहुँचाना है और कार्बन डाइऑक्साइड को वहाँ से फेफड़ों में सफाई के लिए लाना है। मलेरिया परजीवी ग्रस्त लाल रक्त कणिका सामान्य कणिका की अपेक्षा अधिक ऑक्सीजन ग्रहण करती है। परपोषी के चयापचयन में उत्तेजना आने के कारण मलेरियाग्रस्त लाल रक्त कणिका की श्वास प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। मलेरिया परजीवी को शायद अपनी डीएनए की पिरिमिडीन का जैव संश्लेषण करने के लिए ऑक्सीजन का उपयोग करना पड़ता है।

मलेरिया परजीवी कार्बन डाइऑक्साइड को ग्रहण करके एलानीन, एस्पार्टिक और ग्लुटामिक अम्ल (एसिड) बनाता है। कार्बन डाइऑक्साइड के ग्रहण द्वारा बनी कुछ ही एमीनों एसिड मलेरिया परजीवी की प्रोटीन बनाने के उपयोग में आती है।

मलेरिया परजीवी लाल रक्त कणिका में पाए जाने वाले हेमोग्लोबिन का विघटन अम्ल युक्त रिक्तिका में करता है और उससे प्राप्त एमीनो एसिड का उपयोग अपनी प्रोटीन बनाने में करता है। लाल रक्त कणिका के भीतर परजीवी के सामान्य विकास के लिए हेमोग्लोबिन के विघटन की आवश्यकता होती है। परजीवी विकास में उसके डीएनए की मात्रा दस से लेकर बीस गुना हो जाती है और आरएनए की मात्रा डीएनए की मात्रा से भी पाँच गुना अधिक। आरएनए परजीवी के जीव द्रव्य में उपस्थित रायबोज़ोमों में सुरक्षित रहता है।

मलेरिया परजीवी बनी बनाई प्यूरीनों का उपयोग नहीं कर सकता, इसलिए उसके पास अपने लिए उपयोगी प्यूरीनें बनाने के प्रकिण्व (एन्ज़ाइम) होते हैं। फोलेट कोएन्ज़ाइम उनके संश्लेषण के लिए अनिवार्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मलेरिया परजीवी अपनी श्वसन भोजन इत्यादि जैव क्रियाओं के लिए समग्र सामग्री लाल रक्त कणिका से लेता है ☐

हिन्दी प्रस्तुति : **डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा**

यूरोप के इतिहास में मलेरिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मस्तिष्क मलेरिया *(प्लाज़्मोडियम फैल्सीपैरम)* ने विश्व-विजय की कामना रखने वाले परम प्रतापी सिकन्दर की जीवन-लीला तैतीसवें वर्ष में ही समाप्त कर दी थी।

प्रासंगिकी

मलेरिया पर अनुसन्धान की दिशाओं पर गोष्ठी

राष्ट्रीय विज्ञान सप्ताह (23 से 28 फरवरी 1995) के अन्तर्गत भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद् के प्रतिष्ठित संस्थान ''मलेरिया अनुसन्धान केन्द्र'' (मलेरिया रिसर्च सैण्टर) में ''मलेरिया पर अनुसन्धान की दिशाएँ'' विषय पर हिन्दी में एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता विख्यात वैज्ञानिक एवं केन्द्र के निदेशक डॉ० विनोद प्रकाश शर्मा ने की। इस अवसर पर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक डॉ० गंगा प्रसाद ''विमल'' विशेष अतिथि थे। मलेरिया पर अनुसन्धान की दिशाओं पर प्रकाश डालते हुए डॉ० शर्मा ने कहा कि आनुवंशिकीय संसाधनों से मच्छरों की ऐसी जाति विकसित की जा सकती है जो मलेरिया का संक्रमण (इन्फेक्शन) ही ग्रहण न कर सके और मलेरिया संचार रुक जाए। आनुवंशिक उपायों द्वारा मच्छरों की संख्या में भी कमी लाई जा सकती है। यह मलेरिया पर अनुसंधान की नई दिशा है जिस पर अभी कार्य होना है। प्राकृतिक उपायों द्वारा जैसे लार्वा-भक्षी मछलियों एवं अन्य जीवों के प्रयोग की जैव-पर्यावरणीय पद्धति अपना कर भी मलेरिया नियन्त्रण के दीर्घकालीन एवं दूरगामी उपाय किए जा सकते हैं। जड़ों से पानी सोखने वाले सफ़ेदे के पेड़ लगाकर दल-दल दूर की जा सकती है। दल-दल और जमा पानी में मच्छर पनपते हैं। मछली पालन एवं वृक्षारोपण से लोगों को आजीविका भी मिल सकती है। यह सर्वांगीण ग्रामीण विकास गान्धी दर्शन के अनुकूल है जबकि कीटनाशियों द्वारा नियन्त्रण महँगा होता है और पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। कीटनाशियों के विरुद्ध मलेरिया-वाहक मच्छरों में प्रतिरोध भी उत्पन्न हो जाता है जो मलेरिया की रोकथाम में बहुत बड़ी बाधा है।

मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम के डॉ० बी० सीताराम राव ने कहा कि मलेरिया की रोकथाम में सबसे बड़ी बाधा प्रबन्ध-कौशल की कमी है जो प्रशासनिक त्रुटियों के कारण उत्पन्न हुई। डीडीटी की प्रारम्भिक सफलता के कारण वैज्ञानिकों में ऐसा हर्षोल्लास छा गया कि वे मलेरिया के प्रति उदासीन हो गए। इसके फलस्वरूप मलेरिया फिर से अपनी पूरी शक्ति के साथ वापिस आ गया। श्री नन्दलाल कालरा ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मलेरिया समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहा कि अंग्रेजी-राज में मलेरिया की समस्या इतनी विकट थी कि उसने करोड़ों व्यक्तियों को रोगी बना दिया था और लाखों लोगों के प्राण हर लिए थे। जो मलेरिया से मर गया वह भले ही मुक्त हो गया हो किन्तु जो जीवित बचा वह तपेदिक आदि अनेक भयानक रोगों का शिकार हो गया। मलेरिया ने तत्कालीन अर्थ व्यवस्था को इतना अस्त-व्यस्त कर दिया था कि अंग्रेज़ भी भारत के आर्थिक शोषण और सैनिक अभियानों के लिए मलेरिया की रोकथाम के लिए विवश हो गए थे।

जब खेतों में फसलें खड़ी होती हैं तभी मलेरिया अपने चरम संचार पर होता है। हज़ारों मज़दूर और कामगार इसकी चपेट में आ जाते हैं। फसलें काटने और खेती के काम के लिए आदमी नहीं मिलते। इससे पैदावार पर बहुत घातक प्रभाव पड़ता है। डॉ० कालरा ने कहा कि हमें मच्छरों को उनके प्रजनन-स्थलों पर ही नष्ट कर देना चाहिए। विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं और निर्माण कार्यों में ऐसे संरचनात्मक परिवर्तन करने चाहिएँ कि मच्छर-जनक और मलेरिया-जनक परिस्थितियाँ ही समाप्त हो जाएँ। डॉ० अरुणा श्रीवास्तव एवं डॉ० रमेश चन्द्र धीमान ने उपग्रह द्वारा भू-रचना के चित्र प्राप्त करके उनसे मच्छर-जनक स्थितियों का पता लगाने की विधि पर प्रकाश डाला। डॉ० हेमा जोशी ने कहा कि अभी तक एक मानी जाने वाली मलेरिया-वाहक मच्छर जाति में आनुवंशिक आधार पर ए, बी, सी, डी, उप-भेदों को स्पष्ट किया। उन्होंने आदिवासियों की रक्त-संरचना की विशेषताओं का उल्लेख किया जिसके कारण उन्हें

मलेरिया नहीं होता। डॉ० भूपेन्द्र नाथ नागपाल ने मच्छरों को दूर रखने के लिए केन्द्र द्वारा विकसित नीम के तेल के उपयोग की विधि पर प्रकाश डाला। डॉ० नीना वलेचा ने मलेरिया वैक्सीन को विकसित करने तथा उसकी प्रगति और विकास में पड़ने वाली बाधाओं का विवरण दिया।

विशेष अतिथि डॉ० गंगा प्रसाद ''विमल'' ने कहा कि मौलिक चिन्तन मातृ-भाषा में ही अच्छी तरह हो सकता है। आपने कहा कि भारतीय भाषाओं में मूल-भूत एकता है और भाषा-विवाद एक कृत्रिम समस्या है। हमारे देश की भाषाओं में सदा से ही भाषागत सद्‌भाव बना हुआ था जो विभिन्न राजनीतिक स्वार्थों के कारण छिन्न-भिन्न हो गया।

हिन्दी परामर्शक डॉ० सुरेन्द्र कुमार शर्मा ने स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने वाली वैज्ञानिक प्रक्रिया स्पष्ट की व केन्द्र की वैज्ञानिक उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने गोष्ठी सफल बनाने के लिए वैज्ञानिकों के प्रति आभार प्रकट किया।

समाचारपत्रों के पंजीकरण (केन्द्रीय) नियम 1956 के नियम 8 के अन्तर्गत अपेक्षित ''मलेरिया पत्रिका'' के स्वामित्व तथा अन्य मुद्दों से सम्बन्धित विवरण

प्रकाशन का स्थान	मलेरिया अनुसन्धान केन्द्र, 22-शाम नाथ मार्ग, दिल्ली-110 054
प्रकाशन की अवधि	त्रैमासिक
मुद्रक का नाम	डॉ० विनोद प्रकाश शर्मा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	मलेरिया अनुसन्धान केन्द्र, 22-शाम नाथ मार्ग, दिल्ली-110 054
प्रकाशक का नाम	डॉ० विनोद प्रकाश शर्मा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	उपर्युक्त
सम्पादक का नाम	डॉ० विनोद प्रकाश शर्मा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	उपर्युक्त

मैं डॉ० विनोद प्रकाश शर्मा, यह घोषणा करता हूँ कि ऊपर दिए गए तथ्य मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

ह०/-
डॉ० विनोद प्रकाश शर्मा
प्रकाशक

विज्ञान रश्मि

वैज्ञानिक जिसने सूक्ष्म-जैविकी का प्रवर्तन किया...

लुई पास्चर फ्रान्स के युग प्रवर्तक वैज्ञानिक थे जिनका जन्म 27 दिसम्बर 1822 को फ्रान्स के ''डोले जुरा'' नामक शहर में हुआ था। आपकी वैज्ञानिक शिक्षा पेरिस स्थित इकोल नोर्मेल सुपेरीरे कॉलेज में हुई जहाँ से आपने 1847 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् आपने कई प्रतिष्ठित संस्थानों में विज्ञान का प्राध्यापन किया और अन्ततः आप इकोल में ही वैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुसन्धान के निदेशक बने। आपकी पहली खोज क्रिस्टलोग्राफी में थी जिसमें आपने पोलराइज़्ड प्रकाश द्वारा क्रिस्टलों में अइसोमेरिज़्म की खोज की। आपने पता लगाया कि शर्कराओं का अलकोहल में परिवर्तन एक जैव-प्रक्रिया है और शर्कराओं से लैक्टिक एसिड, ब्यूटिरिक एसिड एवं अलकोहल तथा अलकोहल का एसिटिक एसिड में परिर्वतन स्पष्ट किया। सन् 1857 में आपने अपने जीवाणु-सिद्धान्त (जर्मथ्योरी) का प्रतिपादन किया। जीवाणुओं के विशिष्ट आहार के आधार पर जीवाणुओं को पृथक करने की विधि बताई। कुछ विशेष जीवाणु द्वारा ऑक्सीजन रहित वातावरण में ऊर्जा प्राप्त करने की विधि पर प्रकाश डाला। आपने विसंक्रमण-विधियों (स्टेरिलाइजिंग मेथड) का उपयोग बताया। रेशम के कीड़ों की बीमारी को दूर करने में भी आप सफल रहे। सन् 1882 में कुत्ते के काटने से होने वाले रोग रेबीज़ को उत्पन्न करने वाले विषाणु (वायरस) की खोज की। इस प्रकार आपने विषाणु अथवा वायरस की एक नई दुनियाँ का पता लगाया और विषाणु विज्ञान की नींव डाली। कुत्तों और मनुष्यों में रेबीज़ वैक्सीन बनाने की विधि भी आपने विकसित की। इन खोजों ने पास्चर को विश्व विख्यात वैज्ञानिक बना दिया और पेरिस में ''पास्चर इन्स्टीट्यूट'' की स्थापना के लिए विपुल धन राशि जमा हुई। 46 वर्ष की उम्र में लकवा मार जाने पर भी आप आमरण विज्ञान की खोज में उत्साहपूर्वक लगे रहे। आपका देहान्त 28 सितम्बर 1895 में हुआ।

सुरेन्द्र कुमार शर्मा

पंजीयन संख्या 57151/93

जन सहयोग!
इसके बिना न जाएँगे,
संचारी रोग!

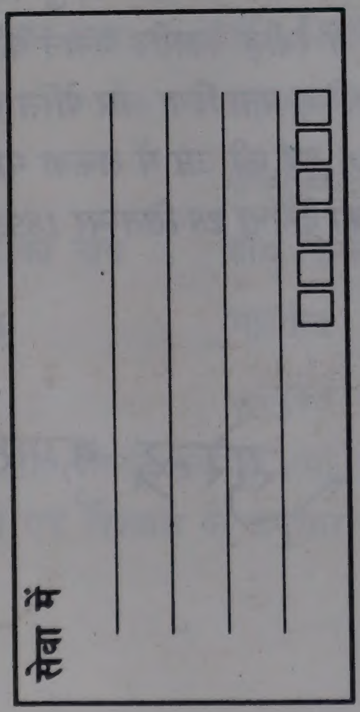

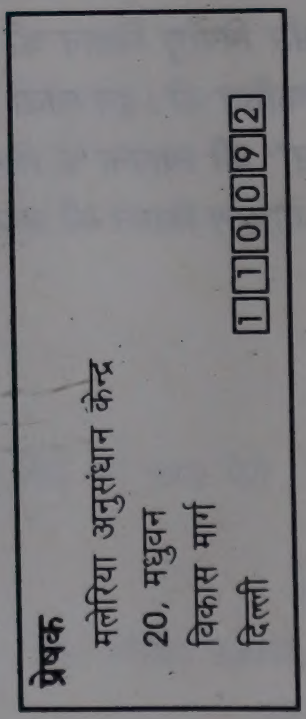

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी डॉ० विनोद प्रकाश शर्मा, निदेशक, मलेरिया अनुसंधान केन्द्र, 22-शाम नाथ मार्ग, दिल्ली-110 054.
मुद्रणालय : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20-अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002